

# कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद

का

## अड़तीसवां वार्षिक अधिवेशन

दिनांक—25-26-27 अक्टूबर 2015

दिन—रविवार, सोमवार, मंगलवार

क्वार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा

स्थल—कबीर आश्रम, कबीर नगर, इलाहाबाद

### निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 12.50 रुपये,

वार्षिक 40 रुपये,

आजीवन 800 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

### पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

इलाहाबाद-211011

फोन : 2090366, 7376786230

Vist us : [www.kabirparakh.com](http://www.kabirparakh.com)

E-mail : [kabirparakh@yahoo.com](mailto:kabirparakh@yahoo.com)

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित

## श्रद्धांजलि

श्रद्धेय संत श्री शरणपाल साहेब जी कबीर पंथ पारख सिद्धांत बड़हरा संत-समाज के वरिष्ठ संतों में से एक समर्पित संत थे। आपका जन्म वर्तमान छत्तीसगढ़ के रायपुर ( अब धमतरी ) जिला के दर्रा गांव में सन् 1930 में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री अलाल साहू तथा माता का नाम श्रीमती कामिन बाई था। आपके बचपन का नाम मेहतर साहू था।

दर्रा तथा आसपास के गांवों में बहुत पहले से पारखी संतों का आगमन होता रहता था, जिनके दर्शन-सत्संग का लाभ मेहतर राम लेते रहते थे। जब सन् 1954 के बाद बड़हरा संत-समाज के संतों को साथ लेकर सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब का छत्तीसगढ़ आगमन होने लगा तब उनके ज्ञान, वैराग्य, सरल साधु रहनी से प्रभावित होकर मेहतर राम जी 26 वर्ष की युवा अवस्था में सन् 1956 में गृह त्यागकर सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब जी की शरण में आ गये और सेवा-साधना करने लगे। बड़हरा में सन् 1959 में सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब जी द्वारा आपका साधुवेष हुआ और आपका नाम मेहतर राम से बदलकर शरणपाल दास रखा गया जिन्हें हम संत श्री शरणपाल साहेब जी के नाम से जानते हैं।

श्री शरणपाल साहेब जी के जीवन पर सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब जी के पट्ट शिष्य श्रद्धेय संत श्री अभिलाष साहेब जी का गहरा प्रभाव पड़ा और आप ज्यादातर उनके साथ ही रहकर सेवा-साधना करने लगे। श्रद्धेय श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा लिखित अनेक ग्रंथों की श्री शरणपाल साहेब जी ने प्रेस कापी तो तैयार किया ही उनके साथ वाराणसी में रहकर आपने पूफ रीडिंग में भी सहयोग किया और अनेक पुस्तकों का प्रकाशन व्यय भी आपने वहन किया। बड़हरा संत-समाज एवं श्रद्धेय श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा लिखित पुस्तकों के प्रारम्भिक प्रकाशन काल में श्री शरणपाल साहेब जी का उल्लेखनीय सहयोग रहा है। आगे चलकर तो ग्राम दर्रा का आपका पैतृक निवास संत आश्रम ही बन गया और आपने अपनी पूरी चल-अचल संपत्ति सद्गुरु के चरणों में समर्पित कर दी। फिर तो ग्राम दर्रा का कबीर आश्रम छत्तीसगढ़ में बड़हरा संत-समाज तथा अन्य संतों का केन्द्र बन गया।

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी के संरक्षण में 20 फरवरी सन् 1990 में जब श्री कबीर संस्थान नवापारा, राजिम की स्थापना हुई तब संतों तथा भक्तों के विशेष आग्रह के कारण न चाहते हुए भी सन् 1990 से लेकर सन् 2013 तक आप श्री कबीर संस्थान नवापारा-राजिम के अध्यक्ष पद पर सेवा करते रहे और आपकी अध्यक्षता तथा देख-रेख में श्री कबीर संस्थान नवापारा-राजिम बहुत जल्दी छत्तीसगढ़ के पारखी संतों-भक्तों का एक प्रमुख तीर्थस्थल बन गया।

लगभग 60 वर्ष के साधना जीवन काल में आपने अपने को पूरी तरह गढ़ा-संवारा और आपका साधना जीवन पूर्णरूपेण निष्कलंक-निर्दोष-निर्मल रहा है। आपको किसी भी प्रकार का अहंकार-अभिमान छू तक नहीं गया था। आप अत्यंत निर्मानी संत थे। छोटे-से-छोटे साधु को भी आप पूरा सम्मान देते थे। किसी सभा में आगे और सामने बैठने की आपने कभी चेष्टा नहीं की। आप अपने को सदैव पीछे और नीचे ही रखने की चेष्टा करते रहे।

सरल, संकोची, निर्मानी होने के साथ-साथ आप बड़े संतोषी भी थे। जो मिला खा लिए और जो मिला पहन लिए। आपका यह स्वभाव जीवनपर्यंत बना रहा। जीवन के अंतिम समय को छोड़कर बीमार होकर चार-छह दिन बिस्तर पर पड़े हुए आपको कभी नहीं देखा गया।

आपके जीवन का हर पहलू साधु रहनी के अनुकूल ही रहा है तथा साधकों के लिए प्रेरणादायी भी। दिनांक 07.05.2015 को आपका पार्थिव शरीर प्रातः लगभग 8 बजे शांत हो गया। आपके शरीरांत से एक सरल, शीलवान, संयमी, संतोषी और उदार संत की जो क्षति हुई है उस क्षति को पूरा नहीं किया जा सकेगा। कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद के सभी संत-भक्त समाज आपकी स्मृति में भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

कबीर जयंती, 2 जून 2015

धर्मेन्द्र दास

## ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

<p>प्रवर्तक सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा पोस्ट—महोबाजार जिला—गोंडा, उ०प्र०</p> <p>आदि संपादक सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब</p> <p>संपादक धर्मेन्द्र दास</p> <p>आदि व्यवस्थापक प्रेम प्रकाश</p> <p>मुद्रक एवं प्रकाशक गुरुभूषण दास</p> <p>पारख प्रकाश इंटरनेट पर www.kabirparakh.com</p> <p>वार्षिक शुल्क—40.00 एक प्रति—12.50 आजीवन सदस्यता शुल्क 800.00</p>	<h3>विषय-सूची</h3> <table border="0"> <thead> <tr> <th>कविता</th> <th>लेखक</th> <th>पृष्ठ</th> </tr> </thead> <tbody> <tr> <td>झीनी झीनी बीनी चदरिया</td> <td>सद्गुरु कबीर</td> <td>1</td> </tr> <tr> <td>इंसान बनाओ</td> <td>लखन प्रतापगढ़ी</td> <td>15</td> </tr> <tr> <td>कसौटी</td> <td>राधाकृष्ण कुशवाहा</td> <td>56</td> </tr> <tr> <td>जीवन का रूप सँवर जाये</td> <td>श्रीमती मीना जैन</td> <td>56</td> </tr> <tr> <td colspan="3"><b>स्तंभ</b></td> </tr> <tr> <td>पारख प्रकाश / 2</td> <td>व्यवहार वीथी / 16</td> <td>बीजक चिंतन / 24</td> </tr> <tr> <td>शंका समाधान / 33</td> <td>परमार्थ पथ / 43</td> <td></td> </tr> <tr> <td colspan="3"><b>लेख</b></td> </tr> <tr> <td>कबीर : हमारे समय के झरोखे से</td> <td>श्री प्रमोद वर्मा</td> <td>6</td> </tr> <tr> <td>दो पाटों के बीच</td> <td>श्री सदानन्द शाही</td> <td>12</td> </tr> <tr> <td>कबीर वाणी की कसौटी पर धर्मशास्त्र</td> <td>श्री धर्मदास</td> <td>19</td> </tr> <tr> <td>चलो, जिंदगी की बात करें</td> <td>श्री सुधांशु श्रीवास्तव</td> <td>27</td> </tr> <tr> <td>संतो घर में झगड़ा भारी</td> <td>श्री कजोड़ मल मीना</td> <td>28</td> </tr> <tr> <td>मैं कहता आँखन देखी</td> <td>रमेश दास</td> <td>35</td> </tr> <tr> <td>धर्म और पूजा की सार्थकता</td> <td>धर्मेन्द्र दास</td> <td>39</td> </tr> <tr> <td>विचारों से उत्थान और पतन</td> <td>विवेक दास</td> <td>45</td> </tr> <tr> <td>लाओत्जे क्या कहते हैं?</td> <td></td> <td>49</td> </tr> <tr> <td>भिखारी कौन?</td> <td>सौम्येन्द्र दास</td> <td>52</td> </tr> <tr> <td>धरती पर स्वर्ग</td> <td></td> <td>57</td> </tr> </tbody> </table>	कविता	लेखक	पृष्ठ	झीनी झीनी बीनी चदरिया	सद्गुरु कबीर	1	इंसान बनाओ	लखन प्रतापगढ़ी	15	कसौटी	राधाकृष्ण कुशवाहा	56	जीवन का रूप सँवर जाये	श्रीमती मीना जैन	56	<b>स्तंभ</b>			पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 16	बीजक चिंतन / 24	शंका समाधान / 33	परमार्थ पथ / 43		<b>लेख</b>			कबीर : हमारे समय के झरोखे से	श्री प्रमोद वर्मा	6	दो पाटों के बीच	श्री सदानन्द शाही	12	कबीर वाणी की कसौटी पर धर्मशास्त्र	श्री धर्मदास	19	चलो, जिंदगी की बात करें	श्री सुधांशु श्रीवास्तव	27	संतो घर में झगड़ा भारी	श्री कजोड़ मल मीना	28	मैं कहता आँखन देखी	रमेश दास	35	धर्म और पूजा की सार्थकता	धर्मेन्द्र दास	39	विचारों से उत्थान और पतन	विवेक दास	45	लाओत्जे क्या कहते हैं?		49	भिखारी कौन?	सौम्येन्द्र दास	52	धरती पर स्वर्ग		57
कविता	लेखक	पृष्ठ																																																											
झीनी झीनी बीनी चदरिया	सद्गुरु कबीर	1																																																											
इंसान बनाओ	लखन प्रतापगढ़ी	15																																																											
कसौटी	राधाकृष्ण कुशवाहा	56																																																											
जीवन का रूप सँवर जाये	श्रीमती मीना जैन	56																																																											
<b>स्तंभ</b>																																																													
पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 16	बीजक चिंतन / 24																																																											
शंका समाधान / 33	परमार्थ पथ / 43																																																												
<b>लेख</b>																																																													
कबीर : हमारे समय के झरोखे से	श्री प्रमोद वर्मा	6																																																											
दो पाटों के बीच	श्री सदानन्द शाही	12																																																											
कबीर वाणी की कसौटी पर धर्मशास्त्र	श्री धर्मदास	19																																																											
चलो, जिंदगी की बात करें	श्री सुधांशु श्रीवास्तव	27																																																											
संतो घर में झगड़ा भारी	श्री कजोड़ मल मीना	28																																																											
मैं कहता आँखन देखी	रमेश दास	35																																																											
धर्म और पूजा की सार्थकता	धर्मेन्द्र दास	39																																																											
विचारों से उत्थान और पतन	विवेक दास	45																																																											
लाओत्जे क्या कहते हैं?		49																																																											
भिखारी कौन?	सौम्येन्द्र दास	52																																																											
धरती पर स्वर्ग		57																																																											

### विशेष ध्यान शिविर

कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद के तत्त्वावधान में निम्न स्थलों पर निम्नांकित तिथियों पर विशेष ध्यान शिविर का आयोजन किया जा रहा है—

17 अगस्त से 23 अगस्त, 2015 : श्री कबीर संस्थान, नवापारा ( राजिम ), रायपुर, छत्तीसगढ़

सम्पर्क : 09926137179, 08720893818

3 सितंबर से 10 सितंबर, 2015 : कबीर पारख संस्थान, प्रीतमनगर, इलाहाबाद

सम्पर्क : 0532-2090366, 2090156

09451369965, 09451059832

उक्त ध्यान शिविरों में सीमित साधकों के लिए ही व्यवस्था रहेगी। अतः कोई भी साधक किसी भी शिविर में बिना पूर्व अनुमति के न आवें। जो साधक जहां के शिविर में भाग लेना चाहें, वहां के पते पर ही संपर्क करें, अन्य स्थल पर नहीं। जो साधक ध्यान शिविर के दौरान पूर्ण मौन पालन कर सकें तथा पूरी अवधि तक रुक सकें वे ही भाग लें। ध्यान शिविर में भाग लेने वालों का शहर, बाजार जाना वर्जित रहेगा।



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,  
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



सहै कुशब्द वाद को त्यागे, छाड़े गरब गुमाना।  
आतम राम ताहिको मिलिहैं, कहैं कबीर सुजाना सद्गुरु कबीर

वर्ष ]

इलाहाबाद, आषाढ़, वि० सं० , जुलाई , सत्कबीराब्द

[अंक

### झीनी झीनी बीनी चदरिया

काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया  
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया  
अष्ट कमल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त्व गुण तीनी चदरिया  
साँई को बिनत मास दस लागै, ठोंक ठोंक के बीनी चदरिया  
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया  
दास कबीर यतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया

x

x

x

### कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो

चंदन काठ के बनल खटोलना, ता पर दुलहिन सूतल हो  
उठो री सखी मोरि माँग सँवारो, दुलहा मोसे रूठल हो  
आये यमराज पलँग चढ़ि बैठे, नैनन आँसू छूटल हो  
चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुँ दिसि धूँ धूँ उठल हो  
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो

## कबीर वाणी की विशेषता

कोई भी वाणी, चाहे वह मौखिक रूप में हो चाहे लिखित रूप में, चाहे वह बड़े-से-बड़े कहे जाने वाले संत या धर्मगुरु द्वारा कही गयी हो या चाहे ईश्वरीय वाणी, आप्त प्रमाण कहे जाने वाले धर्मग्रंथों में लिखी हुई हो, उसका महत्त्व इस बात में है कि वह मनुष्य को पशु समान धरातल से उठाकर मनुष्यता की धरातल पर लाये; भ्रम, भ्रान्ति, अंधविश्वास एवं चमत्कारों के दलदल से निकालकर विवेक-विचार तथा ज्ञान की ठोस धरातल पर लाये और देव-गोसैया की बैसाखी छुड़ाकर मनुष्य को अपने कदमों पर खड़ा होने की प्रेरणा दे तथा परावलंबन-परमुखापेक्षिता की भावना छुड़ाकर मनुष्य को स्वावलंबी-आत्मविश्वासी बनाये। जो वाणी इसके विपरीत है वह त्यागने योग्य है चाहे वह किसी की लिखी हुई हो या चाहे किसी की कही हुई।

जो मनुष्य सारे भय, भ्रम और भ्रान्ति से मुक्त होकर तथा निर्भ्रान्त आत्मबोध प्राप्तकर आत्मतृष्टि, आत्मतृप्ति एवं आत्मशांति पाना चाहता है उसे पूर्ण निष्पक्ष होकर सभी वाणियों पर विचार करके असार का त्याग और सार का ग्रहण करना होगा। उसे यह कभी नहीं देखना चाहिए कि किसने कहा है और कहां लिखा है, किंतु यह देखना चाहिए कि क्या कहा गया और लिखा गया है। जो लिखा गया है वह प्रकृति की कारण कार्य-व्यवस्था, तत्त्वों के गुण-धर्म तथा विश्व के शाश्वत नियमों के अनुकूल है या नहीं। हां, विचार करने के बाद असार का त्याग तथा सार का ग्रहण कर उसके अनुसार जीवन-आचरण बनाना होगा; क्योंकि ज्ञान-वैराग्य की कितनी ऊंची से ऊंची बात क्यों न हो, बिना आचरण के न तो मानसिक दुखों से छुटकारा होगा और न आत्मतृप्ति-आत्मशांति की अनुभूति होगी।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि अमुक महापुरुष की वाणी में या अमुक किताब, धर्मग्रंथ में केवल भ्रम, कल्पना, अंधविश्वासपूर्ण असार बातें ही हैं, उनमें कुछ भी सार नहीं है। दुनिया के हर महापुरुष की वाणी में

तथा हर किताब-धर्मग्रंथ में सार वाणी है। आवश्यकता है उसे फटक-पछोर कर निकाल लेने की। इस संबंध में कबीर-वाणी मार्गदर्शक का काम करती है। कबीर-वाणी धर्म-अध्यात्म के क्षेत्र में फैले सारे भ्रम-भ्रान्ति, अंधविश्वास को छिलके की तरह उतार देती है और ज्ञान के क्षेत्र में कारण-कार्य-व्यवस्था संबलित तथा विश्व के शाश्वत नियमों के अनुकूल भूमिका तैयार कर निर्भ्रान्त आत्मबोध का मार्ग प्रशस्त करती है और मनुष्य को देव गोसैया की बैसाखी छुड़ाकर अपने कदमों पर खड़ा होने तथा ज्ञान के अनुसार जीवन-आचरण बनाने की सीख-प्रेरणा देती है। कबीर-वाणी की विशेषता है कि वह मनुष्य को सारे भय और प्रलोभन से मुक्त कर अंदर से पूर्ण निर्भय बनाती है। जो व्यक्ति पूर्ण निष्पक्षता एवं गंभीरता के साथ कबीर-वाणी का अध्ययन कर थोड़ा भी उसे जीवन-आचरण में उतार लेगा उसे न तो भूत-प्रेत, जादू-टोना, शकुन-अपशकुन, ग्रह-लग्न, दैव-गोसैया आदि का भय रह जायेगा और न उसे किसी से शापित होकर नरक जाने का भय रह जायेगा, न उसे किसी काल्पनिक स्वर्ग में जाकर सुख भोगने का प्रलोभन रह जायेगा और न बाहर ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा पाने और उसमें मिलकर मोक्ष पाने का, क्योंकि कबीर-वाणी के अध्ययन से स्वर्ग-नरक, मोक्ष, ईश्वर, ब्रह्म आदि की वास्तविकता स्पष्ट रूप से समझने में आ जायेगी।

सबसे पहले तो आदमी के मन में काल्पनिक देव तथा ईश्वर का भ्रम तथा भय रहता है कि वे हमसे नाराज न हो जायें और नाराज होकर हमें किसी प्रकार का नुकसान न कर दें। इस भय से आदमी पूजा-पाठ करके देवी-देवताओं तथा ईश्वर को खुश करना चाहता है और बदले में उनसे रोग, हानि तथा प्रिय-वियोग से बचकर जीवन रहते तक छककर दुनिया के भोगों को भोगते रहने और मरने के बाद स्वर्ग पाने की याचना करता है। कबीर-वाणी अपने अध्येता को इस भ्रम और भय से मुक्त कर देती है। कबीर-वाणी यह बताती है कि आकाश में कहीं कोई देव या ईश्वर नहीं बैठा है जो किसी पर नाराज होकर उसे किसी प्रकार की कोई हानि पहुंचाता है और किसी पर खुश होकर उसे किसी प्रकार का लाभ पहुंचाता हो।

मनुष्य को जो कुछ सुख-दुख, लाभ-हानि होते हैं वह उसके अपने ही किये हुए कर्मों के फल हैं। वे कर्म चाहे आज के किये हों या पहले के। इसलिए उसे अपने कर्म-सुधार पर ध्यान देने की आवश्यकता है न कि पूजा-पाठ द्वारा किसी देव-ईश्वर को खुश करने की। सच्ची पूजा तो कर्म-सुधार है। पवित्र कर्म करने वाले व्यक्ति के मन में किसी प्रकार का कोई भय नहीं रह जाता। वह पूर्ण आश्रित और निर्भय हो जाता है। इसीलिए कबीरपंथ के महातार्किक संत श्री निर्मल साहेब कहते हैं—कर्मों को अपने सुधारोगे भाई। तुम पर जुरम है न ईश्वर खुदाई।

कबीर-वाणी यह बताती है कि देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म आदि आकाश-पाताल में या कहीं बाहर नहीं है, किंतु वह तो प्राणियों के रूप में तथा स्व चेतन सत्ता के रूप में इसी धरती पर है। जितने प्राणी हैं सब देवी-देवता हैं। जान-बूझकर मनसा-वाचा-कर्मणा किसी प्राणी को किसी प्रकार तकलीफ न देना, किन्तु शक्ति चले तक उनकी रक्षा एवं सेवा करना ही उनकी पूजा है। यह ध्यान देने की बात है कि छोटे-बड़े किसी प्राणी को किसी प्रकार तकलीफ देकर तथा उनकी हिंसा-हत्या कर किसी देवी-देवता को पूजा-प्रार्थना से खुश करने की चेष्टा करना अपने को तथा दूसरों को धोखा देना है।

नाना मत-मजहब-संप्रदाय के धर्मगुरुओं ने अपना-अपना ईश्वर बना रखा है और अपने-अपने मत-मजहब के प्रवर्तकों या महापुरुषों को ईश्वर का अवतार, पुत्र या पैगंबर घोषित कर रखा है और अपनी-अपनी किताबों को ईश्वरीयवाणी तथा आप्तप्रमाण। साथ ही वे यह भी घोषणा कर रहे हैं या कर रहे हैं कि उनके महापुरुष, गुरु की शरण में आकर तथा उनके मत-मजहब के अनुयायी बनकर ही स्वर्ग, मोक्ष और ईश्वर पाया जा सकता है, अन्य मत के गुरुओं की शरण में जाकर या अन्य मत-मजहब के अनुयायी बनकर नहीं। साथ ही उन धर्मध्वजियों ने यह भी घोषणा कर रखी है कि जो उनके मत के अनुसार चलता है, उनके मत-मजहब को स्वर्ग-मोक्ष और ईश्वर पाने का एकमात्र रास्ता समझता है वही आस्तिक और दीनदार है, बाकी सब नास्तिक, बेदीन एवं काफिर हैं। उनके धर्मगुरुओं ने जो कह दिया है या उनके धर्मग्रंथों में जो लिख दिया है अनंत काल के

लिए वही सच है, उन पर तर्क-विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि वे आप्त वचन हैं, जो उन पर आंख मूंदकर विश्वास नहीं करता किंतु तर्क-विचार करता है वह गुरुद्रोही, धर्मद्रोही एवं ईश्वरद्रोही है, इसलिए उसे सदा-सदा के लिए नरक में जाना है। इसीलिए कितने लोग धर्म, गुरु और ईश्वर के नाम पर कही गयीं बेसिर-पैर की सड़ी-गली बातों को मानते चले आ रहे हैं, उन्हें छोड़ नहीं पा रहे हैं, जबकि वे समझ रहे हैं कि ये बातें सही नहीं हैं। उन पर तर्क-विचार करने या उन्हें छोड़ देने से उन्हें नरक जाने का भय है।

कबीर-वाणी अपने अध्येता को इस भय से मुक्त कर देती है क्योंकि कबीर-वाणी यह बताती है कि ऊपर आकाश में कहीं कोई ईश्वर बैठा नहीं है जो अवतार लेकर धरती पर आता हो या अपना पुत्र या पैगंबर भेजता हो। आकाश में या लोक-लोकांतर में माना गया ईश्वर काल्पनिक है, जिसे नाना मत के लोगों ने अपने-अपने ढंग से गढ़ रखा है। दुनिया के सभी मत-मजहब-संप्रदाय समय-समय से मनुष्यों द्वारा चलाये गये हैं। सभी मत-प्रवर्तक महापुरुष मनुष्य हैं और दुनिया की सभी किताबें मनुष्य रचित हैं, उनमें कुछ शाश्वत सत्य-तथ्य की बातें हैं और कुछ देश-काल सापेक्ष। इसलिए किसी मत-मजहब, धर्मगुरु-महापुरुष एवं धर्मग्रंथ की बातों को आंख मूंदकर नहीं मानना चाहिए, किंतु उन पर तर्क-विचार करना चाहिए और तर्क-विचार के पश्चात जो युक्ति-युक्त, कारण-कार्य-व्यवस्था, तत्त्वों के गुण-धर्म एवं विश्व के शाश्वत नियमों के अनुकूल, हितकर जान पड़े उन्हें मानना चाहिए, शेष को छोड़ देना चाहिए। तर्क-विचार करना धर्मद्रोह, गुरुद्रोह, ईश्वरद्रोह एवं नास्तिकता नहीं है, किंतु यही सत्य-तथ्य को जानने-समझने का रास्ता है। नास्तिक, काफिर, बेदीन, नापाक आदि शब्द तो गाली है, जिन्हें नाना मत के पुरोहितों ने अपने से भिन्न विचार रखने वालों तथा उनकी सड़ी-गली बातों को आंख मूंदकर न मानने वालों को देने के लिए गढ़ रखे हैं। कबीर-वाणी तो यहां तक कहती है—“जब तक न देखे निज नैना, तब तक न माने गुरु के बैना।” अर्थात् जब तक कोई बात अपने विवेक से सही न लगे, समझ में न आये तब तक गुरु की बातों को भी आंख मूंदकर नहीं मानना चाहिए। जब साक्षात् गुरु की बातों

को भी आंख मूंदकर नहीं मानना है, उन पर भी विचार किया जा सकता है, तब शेष बातों के लिए तो कहना ही क्या है?

दुनिया में एक भी व्यक्ति नास्तिक नहीं है, क्योंकि हर व्यक्ति की कहीं-न-कहीं आस्था है और हर व्यक्ति में नैतिकता के बीज हैं। नास्तिक वह है जो नैतिकता, सदाचार से सर्वथा रहित है, परंतु दुनिया में ऐसा व्यक्ति कोई नहीं मिलेगा, क्योंकि दुर्जन से दुर्जन और दुराचारी से दुराचारी व्यक्ति में भी नैतिकता के बीज हैं। हर मनुष्य को चाहिए कि वह दुनिया के सभी मत-मजहब के महापुरुषों को आदर दे, सबके प्रति श्रद्धाभाव रखे तथा विनम्रतापूर्वक सब जगह से सार ग्रहण करे और उसका आचरण करे। स्वामी विवेकानंद ने कहा है—पहले के जमाने में नास्तिक उसे कहा जाता था जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करता था, किंतु नास्तिक वह है जो अपने पर विश्वास नहीं करता। उन्होंने और भी कहा है—मैं उस ईश्वर का पुजारी हूँ जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं। वस्तुतः हर आदमी का कर्तव्य है कि मनुष्यता को समझे, मनुष्यता को आदर दे और सही अर्थों में मनुष्य बने। जो सही अर्थों में मनुष्य बन गया वही सच्चा आस्तिक है। उसे किसी ईश्वर का डर नहीं रह जाता और न उसे नरक जाने का भय रह जाता है।

कबीर साहेब कहते हैं कि 'जेहि डर से भव लोग डरतु हैं, सो डर हमरे नाहीं।' दुनिया के लोग किनसे डरते हैं? पुरोहितों तथा धर्मगुरुओं से। क्योंकि नाना मत के पुरोहितों एवं धर्मगुरुओं ने वर तथा शाप की झूठी-झूठी कहानियां लिख-लिखकर जनता को धमका रखा है तथा पाप-पुण्य का एक जाल तैयार कर रखा है, जिसमें वे आम जनता को उलझाकर रखे हुए हैं। वर-शाप की झूठी कहानियों को पढ़-सुनकर जनता भयभीत है कि पुरोहित तथा गुरुओं की बात नहीं मानेंगे तो वे हमें शाप न दे दें तथा देवी-देवता, ईश्वर हमसे नाराज न हो जायें, क्योंकि ये पुरोहित एवं धर्मगुरु ईश्वर के प्रतिनिधि हैं, इनके माध्यम से, इनके बताये रास्ते पर चलकर ही हम ईश्वर तक पहुंच सकते हैं और उसके दर्शन कर सकते हैं, किन्तु यदि ये ही नाराज हो गये तो हम ईश्वर तक कैसे पहुंच सकेंगे। इसलिए हमें इनको हर प्रकार से खुश रखना है। कबीर वाणी बताती है कि जब जीव से अलग

कोई शिव, ईश्वर है नहीं तब कोई उसका प्रतिनिधि कैसे हो सकता है और ईश्वर-दर्शन मात्र एक छलावा एवं धोखा है, क्योंकि जिसका दर्शन होगा, जो देखने में आयेगा, वह तो रूप-विषय होगा वह ईश्वर कैसे होगा। जब ईश्वर को मन-बुद्धि-वाणी से परे एवं अगोचर कहा गया है तब उसका दर्शन कैसे होगा!

कबीर-वाणी कहती है—पाप पुण्य की शंका नाहीं, स्वर्ग नरक नहीं जाहीं। नाना मत के पुरोहितों-धर्मगुरुओं ने धर्मशास्त्र कहे जाने वाली पुस्तकों में पाप-पुण्य की एक सूची तैयार कर रखी है। जिसमें इनका स्वार्थ सिद्ध हो वह पुण्य तथा जो इनके स्वार्थ के विरुद्ध हो वह पाप। "पाप पुण्य के हाथहिं पासा" पाप-पुण्य के जाल ये अपने हाथ में ले रखे हैं। परंतु अब हमें पाप क्या है तथा पुण्य क्या है यह जानने के लिए किसी पुरोहित तथा धर्मगुरु के पास जाने की आवश्यकता नहीं रह गयी, क्योंकि अब यह पता चल गया है कि जिस वाणी-विचार-कर्म से अपना मन-इंद्रिय चंचल, उत्तेजित एवं तनावग्रस्त हो तथा दूसरों को पीड़ा, दुख, असुविधा पहुंचे, सामाजिक-राष्ट्रीय व्यवस्था बिगड़े वह पाप है और जिस वाणी-विचार-कर्म से अपना मन-इंद्रिय संयत, शांत, स्ववश, निर्मल हो, दूसरों को सुख, सुविधा, प्रसन्नता मिले तथा सामाजिक-राष्ट्रीय व्यवस्था सुदृढ़ हो, लोगों में प्रेम-समता-एकता बढ़े वह पुण्य है। इसके लिए किसी धर्मग्रंथ, ईश्वरीय वाणी, आप्तवचन के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, किन्तु इसके लिए अपने अंतःकरण की गवाही की आवश्यकता है।

पाप-पुण्य की शंका न रह जाने से, किन्तु इनके बारे में सम्यक समझ हो जाने से इनके फल में मिलने वाले नरक का भय तथा स्वर्ग का प्रलोभन भी नहीं रह गया। पाप के फल दुख तथा नरक से बचने के लिए किसी पुरोहित से पूजा करवाने की तथा किसी देवी-देवता, ईश्वर आदि को खुश करने की भी आवश्यकता नहीं रह गयी। जिन देवी-देवताओं तथा ईश्वर कहे जाने वालों की पूजा कर, नाम-जपकर पाप-कर्मों के फल से बचने की आशा की जाती है, पुराणों तथा महाकाव्यों के अनुसार जब वे स्वयं अपने पाप-कर्मों के फल से नहीं बच सके, पाप-कर्मों के फल में उन्हें दुख भोगना पड़ा तब वे हमारे पाप-कर्मों के फल से हमें कैसे बचा सकते हैं। पाप-

कर्मों के फल से छुटकारा का तो रास्ता है पुनः पाप-कर्म न करना। दृढ़ ग्लानि और संकल्पपूर्वक मनसा-वाचा-कर्मणा पाप कर्मों का त्याग कर देना और संयम, सदाचार, साधना के मार्ग में चलना। अब तो यह भी पता चल गया कि बाहर आकाश-पाताल में कहीं स्वर्ग-नरक नहीं है। वह केवल कल्पना है, किन्तु स्वर्ग-नरक इसी जीवन में हैं। मन का चंचल, उत्तेजित, विकारग्रस्त बने रहना; ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, राग-द्वेष, वैर-विरोध की आग में जलते रहना नरक है और मन का संयत, शांत, स्ववश रहना, निर्मल-प्रसन्न रहना, प्रेम-समता-एकता पूर्वक जीवन व्यतीत करना स्वर्ग है। कबीर साहेब कहते हैं—होय बिहिस्त जो चित्त न डोलावै। अर्थात् यदि अपने चित्त को चंचल-उत्तेजित न किया जाये तो आज और अभी स्वर्ग-मोक्ष मिल जाये।

आज के इस विज्ञानयुग में भी बड़े-बड़े विद्वान, प्रोफेसर, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, नेता-अभिनेता भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र के भ्रम में पड़े ओझा-बैगा-सोखा, औलिया, तांत्रिक, साधु बाबा के यहां चक्कर लगाते रहते हैं, जबकि भूत-प्रेत केवल काल्पनिक हैं, भ्रम की उपज हैं तथा तंत्र-मंत्र केवल शब्द जाल हैं। इनसे कुछ होने-जाने वाला नहीं है। कबीर साहेब कहते हैं—‘तंत्र-मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।’ तथा—ये भ्रम भूत सकल जग खाया। अर्थात् ये भ्रममात्र का भूत संसार के बहुत सारे लोगों को भ्रमा रहा है। कबीर-वाणी अपने अध्येता को भूत-प्रेत के चक्कर-भ्रम से मुक्त कर देती है।

कितने लोग इस भ्रम से पीड़ित रहते हैं कि उनके ऊपर ग्रह टेढ़ा हो गया है इसलिए उन पर विपत्ति पर विपत्ति आ रही है, उनका हर काम असफल हो रहा है और उन्हें घाटा-पर-घाटा होता चला जा रहा है। जबकि ग्रह हमारी पृथ्वी से करोड़ों किलोमीटर दूर आकाश में अपनी गति से चक्कर लगा रहे हैं। वे किसी पर टेढ़ा और किसी पर सीधा कैसे होंगे? यदि वे टेढ़ा होंगे तो सब पर होंगे, सबको एक साथ विपत्ति, असफलता, घाटा का सामना करना होगा, और यदि वे सीधा होंगे तो सब पर सीधा होंगे, सबको एक साथ संपत्ति, सफलता और मुनाफा होगा। परंतु इतनी साधारण-सी बात बड़े-बड़े तथाकथित विद्वान नहीं समझ पा रहे हैं और ग्रहशांति करवाने के नाम पर भटक रहे हैं तथा ठगा रहे

हैं। और मान लो ग्रह टेढ़ा हो गया है तो पूजा करने से, हाथ की अंगुलियों में अंगूठी पहनने से तथा गला में, बांह में, कमर में ताबीज पहनने, डोरा-धागा बांधने से वे सीधे कैसे हो जायेंगे। क्या कोई पूजा करके, अंगूठी या ताबीज पहनकर सूर्य की गरमी को दूर कर सकता है। यह तो सीधे-सीधे कुछ लोगों के कमाने-खाने का तरीका है, परंतु भ्रम-अंधविश्वास और प्रलोभन में पड़कर भटकने वालों को इतनी सीधी और साधारण-सी बात समझ नहीं आ रही है। कबीर-वाणी इस भ्रम से भी मुक्त और निर्भय कर देती है।

आदमी को सबसे बड़ा भय होता है मृत्यु का, जबकि वह अवश्यभावी है। न कोई मृत्यु से बचा है और न बचेगा। सबका शरीर एक दिन मरेगा। मृत्यु से भयभीत होने का एक ही कारण है देहाध्यास और विषयासक्ति। जिसने यह समझ लिया कि शरीर मिट्टी, पानी, आग, हवा से निर्मित, हाड़-मांस का ढांचा, मल-मूत्र का पिटारा जड़ ठाट है और मैं इससे सर्वथा पृथक् शुद्ध बुद्ध चेतन हूं, मेरा स्वरूप निर्मल, निर्विकार, अजर-अमर-असंग है, अपने स्वरूप की भूल तथा विषयासक्ति के कारण अनादि काल से आवागमन चक्र में पड़ा हूं, वह शरीराध्यास तथा विषयासक्ति का त्यागकर अपने को मृत्यु भय से मुक्त कर लेता है। क्योंकि वह समझता है कि शरीर मरता है, चेतन नहीं मरता, वह तो अविनाशी है और मैं चेतन हूं, इसलिए मेरी मृत्यु नहीं होगी। जब तक प्रारब्ध शरीर रहता है तब तक वह अनासक्त होकर शुद्ध-सात्त्विक वस्तुओं से शरीर की रक्षा-सेवा करता है, जीवन-व्यवहार तथा लोक-सेवा का काम करता है, किंतु मृत्यु से भयभीत नहीं होता। जिसने देहाध्यास, देहासक्ति, देहाभिमान का तथा सारी विषयासक्ति का त्याग कर दिया है और जो सब तरफ से मन को समेटकर आत्मलीन कर दिया है तथा जो अपने स्वरूप भाव में स्थित है, वह मृत्यु से भयभीत क्यों होगा ! उसके लिए तो मृत्यु का दिन उत्सव का दिन हो जाता है। इसीलिए तो कबीर साहेब कहते हैं—

जेहि मरने से जग डरे, मेरो मन आनंद।

कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरण परमानंद

—धर्मन्द्र दास



## कबीर : हमारे समय के झरोखे से

लेखक—श्री प्रमोद वर्मा

जो जीते जी किंवदंती बन गया हो उसे उससे परे भला कैसे देखा जा सकेगा? इतिहास भी आज के नजरिये से बीते कल के बारे में उपलब्ध आधी-अधूरी जानकारी की व्यक्तिपरक व्याख्या के सिवा भला क्या है? जन-मन में शताब्दियों की खुभी स्मृतियों की तो व्याख्या भी जरूरी नहीं। रचनाकार रचना के बाहर अपने बारे में विशेष कुछ न भी कहे तो खास फ़र्क नहीं पड़ता है। भरे घड़े की एक-दो बूंद से अधिक अपना एकदम निजी भला क्या होता है? हम जो भी कुछ होते हैं दूसरों के सहित होकर ही। कबीर कौन थे? हिन्दू थे या मुसलमान? हिन्दू उन्हें अपना कहते हैं मुसलमान अपना। उन्होंने खुद को न तो कभी हिन्दू कहा न मुसलमान। कभी कुछ कहा तो सिर्फ जुलाहा। (हमारे अपने समय का भी एक आदमी था—गांधी। अपने खिलाफ़ एक मुक़दमे की सुनवाई के दौरान उसने भी अपने को न हिन्दू बताया न बनिया। जुलाहा ही निरूपित किया था खुद को।) जीते जी कबीर पर न हिन्दू ने अपना हक़ जताने का साहस किया न मुसलमान ने, लेकिन देह त्यागने के बाद उनके मुरदा शरीर पर अधिकार जताने दोनों खड़े हो गये। लाश पर से चादर हटायी गयी तो देखकर सब चकित रह गये कि उसके नीचे कुछ भी नहीं था। पंचतत्त्वों से बना शरीर इस तकरार के दौरान उन्हीं पंच तत्त्वों में जा समाया था। बस वह चादर ही बची थी जिसे कबीर ने मनोयोगपूर्वक बुनी थी और जतन से ओढ़कर जाते समय ज्यों की त्यों रख गये थे। लेकिन उसका भी बंटवारा किये बिना हिन्दू-मुसलमान नहीं माने। उसके दो टुकड़े किये गये। आधी चादर हिन्दू ले गये आधी मुसलमान। एक ने कबीर को जला दिया, दूसरे ने दफ़ना दिया। अंतिम क्रिया-कर्म करते ही दोनों ने उन्हें बिसरा दिया। दोनों ही नहीं समझ सके कि ना-हिन्दू ना-मुसलमान का अर्थ दरअसल हां-हिन्दू हां-मुसलमान है। सचमुच ही कबीर जितने हिन्दू थे उतने ही मुसलमान क्योंकि वे तो दोनों के जाये थे। तभी तो दोनों से छूट गाली का रिश्ता मानते थे।

गाली वाली बात से मुझे अपने बचपन का एक प्रसंग याद आ गया। लंबा काला चोगा, गले में ढेर सारी कौड़ियों की माला, ताबीज़ और जाने क्या, कलाई भर लोहे के कड़े और चूड़ियां पहने, एक हाथ में डंडा, दूसरे में भिक्षा-पात्र लिये एक फ़क़ीर दरवाजे पर आकर गुरु-गंभीर आवाज़ में सदा देता—पांच पैसे दो, दस गालियां दूंगा। दक्षिणा मिल जाने पर गिनकर दस दुआएं देता और आगे बढ़ जाता। ज़िन्दगी भर हिन्दू और मुसलमान दोनों को गाली के नाम पर असीसने वाला वह फ़क़ीर कबीर ही तो नहीं था? आलोचना से बढ़कर दुआ क्या है? आलोचना हम उसी की तो करते हैं जिसे प्यार करते हैं। प्यार न करते होते तो क्या कबीर अफ़सोस से हाथ मलते हुए कहते—‘अरे इन दोऊन राह न पाई।’

यह कहते-कहते पूर्वी उत्तर प्रदेश के अलावा दक्षिण कोसल में भी प्रचलित दूसरी जनश्रुति मन में कौंध गयी। पंडितों में शास्त्रार्थ छिड़ा था। श्रोताओं में कबीर का कोई शिष्य भी था। लंबी बहस के बाद सारे पंडित बस ‘एक’ को छोड़ विवाद के सारे मुद्दों पर अंततः एक हो गये। कबीर के शिष्य ने विवादग्रस्त मुद्दे के बारे में अपने गुरु की राय जाननी चाही। कबीर ने हंसकर कहा—जाकर उन्हीं पंडितों से पूछ कि जो रूप से निकल गया, रस से अतीत हो गया, गुण से परे हो गया, वह संख्या में जाकर कैसे अटक गया।

यह सहज ज्ञान ही कबीर की शक्ति है जो तर्क-प्रसूत कम और अनुभव-जन्य अधिक है। यह आंखिन देखा ज्ञान है, कागद लेखी विद्या नहीं। पुरखे बहुत पहले जिसे नेति-नेति कह गये हैं उसे लेकर सिर खपाने से क्या होगा! कबीर कहते हैं वाग्वीर नहीं शूरवीर बनो। वही है शूर जो सिर का सौदा करने हमेशा तैयार रहे। ‘खरी कसौटी राम की खोटा टिकै न कोई, राम कसौटी जो टिके सो जीवत मृत होई।’ जीवत मृत होने का उपाय? कबीर कहते हैं, बहुत आसान है। बस आपा मेट दो। मरने पर तो सभी अग्नि-स्नान करते हैं। जो जीते जी आग में नहाये

उसे भला काल क्या मारेगा : 'हैं तोहिं पूछौं हे सखी जीवत क्यूं न मराई/मूवा पीछे सत करै जीवत क्यूं न कराई।'

इतिहास के दिए सारे घाव और बेहद अन्तर्ग्रस्त समाज की हताश छायाओं का कांवर भर बोझ लादे कबीर सारी जीवन-व्यवस्था, प्रचलित धर्म तथा सत्ता के धुरीहीन चरित्र को साफ़-साफ़ पढ़ रहे थे। जिसके केन्द्र में राम नहीं, वहां सामाजिक न्याय भला कैसे हो सकता है। कबीर के राम पूर्णकाम हैं जिसकी निर्द्वन्द्व परिभाषा वे कुछ यों करते हैं—'जिसि कृपा करे तिति पूरन काज। कबीर का स्वामी गरीब नवाज।' (यहां भी बरबस गांधी याद आ जाते हैं जिनका स्वामी भी यही दरिद्रनारायण था)। कवि का त्रास यों तो तुलसी में भी कम नहीं था और जागकर फिर से न सोने का संकल्प भी—लेकिन वह आत्मज्ञान का संकल्प था। असंख्य इत्यादि जन की तरह जनम के दुखियारे कबीर तो सामाजिक विषमता के चलते अहर्निश जागते और सोते रहने के लिए अभिशप्त हैं। जन्म से दुःखी और तिरस्कृत मध्यकाल के बड़े कवियों, कबीर और तुलसी में भरपूर विचलन है। फ़र्क़ यह है कि कबीर का विचलन समूचे तिरस्कृत समाज का था जबकि तुलसी का संस्कारशील किन्तु तिरस्कृत ब्राह्मण का।

## दो

नीरद चौधरी के अनुसार भारत अपनी प्रकृति से ही परम्परावादी है और आत्म-निरीक्षण यहां के निवासियों का गुण कभी नहीं रहा। पता नहीं वैदिक परम्परा के समानान्तर चली आ रही उसके विरोध की धारा उनसे अलक्षित कैसे रह गयी। बौद्ध, जैन और चार्वाक जैसे वेद-विरोधी दर्शनों के अतिरिक्त मध्ययुग में शंकराचार्य और ब्रह्मसूत्रों के अन्य भाष्यकारों के बौद्धिक चिन्तन के रूढ़ सामाजिक रूप पर सिद्धों और नाथों ने भी प्रबल प्रहार किये थे। निर्गुण धारा के संतों को रूढ़ि-ध्वंस की परम्परा इन्हीं सिद्धों-नाथों से विरासत में मिली थी। एक कबीर ही यह प्रमाणित करने को काफ़ी हैं कि ऊपर-ऊपर से स्थिर और प्रशांत प्रतीत होते भारतीय समाज के

अंतस में आलोड़न-विलोड़न की प्रक्रिया कैसे निरन्तर गतिमान रही चली आयी थी।

आश्चर्य की बात तो यह है कि नीरद बाबू का अनुसरण करते हुए श्रीकान्त वर्मा जैसे हिन्दी के कवि भी भारतीय समाज को द्वन्द्वहीन कह बैठे हैं। द्वन्द्व जैसे प्राकृतिक सचाई का, जो सभी समाजों में लक्षित की जा सकती है, भारतीय समाज में सर्वथा अभाव भला कैसे होगा। अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि द्वन्द्व और विरोध की रेखा हमारी अपेक्षा पश्चिमी समाज में कुछ अधिक सुस्पष्ट है। द्वन्द्व और विरोध का शमन या तो पश्चिम की तरह उससे जूझकर किया जा सकता है या फिर हमारी तरह तार्किक विश्लेषण के उपरान्त उसे समाज की मुख्य धारा में शामिल करते हुए। अनेक जाति-प्रजातियों के विशालकाय देश के व्यक्ति और व्यक्ति-समूह का अपने अन्तर्निहित द्वन्द्व का हल कर्म के बजाय वैचारिक धरातल पर ढूंढना शुरू से उनकी विवशता रही है। एक जाति के तौर पर जीवित रहते चले आने का इसके सिवा दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं था। द्वन्द्व को अद्वन्द्व में बदलने की समग्र चेष्टा के कारण भारतीय समाज सतही तौर पर चाहे जितना द्वन्द्व-हीन लगे लेकिन वास्तव में वह ऐसा है नहीं। बीच-बीच में उभरते विद्रोह और विग्रह के स्वर और उनके शमन तथा समन्वय की चेष्टाओं का जारी रहना इसका निर्भ्रान्त प्रमाण है। मध्ययुग में प्रतिरोध का सबसे ऊंचा स्वर कबीर का था और समन्वय की सबसे प्रबल चेष्टा तुलसी की। दोनों दरअसल अलग-अलग सिरे से जीवन भर इस एक ही काम में लगे रहे।

## तीन

प्रतिरोध और समन्वय का यह खेल वैसे कबीर और तुलसी के पहले से चला आ रहा था। विक्रम की बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म के तीन प्रमुख आचार्य रामानुज, निम्बार्क और मध्व के आगमन के साथ ही वेदान्तमूलक भक्ति मार्ग का प्रचार सुसंगठित तरीके से होने लगा था। ब्राह्मण धर्म के प्रोटेस्ट के तौर पर आया बौद्ध धर्म वज्रयान और सहजयान जैसे तांत्रिक और योगक्रिया-मूलक रूप धारणकर नाथ सम्प्रदाय के साथ धीरे-धीरे हिन्दू धर्म में

पर्यवसित हो चला था। ओड़िसा और बंगाल के वज्रयानियों और वैष्णव सम्प्रदायों के बीच का अन्तर भी लगभग मिट-सा गया। इसी तरह महाराष्ट्र और राजस्थान में भी नाथपंथ और वैष्णव एक दूसरे के अधिकाधिक निकट आते गये। पूर्वी प्रदेश के संत जयदेव, दक्षिण के नामदेव और ज्ञानदेव, पश्चिम के बेनी और सधना और उत्तर के लालदेव उन रामानंद के पूर्ववर्ती संत थे जिन्हें जनश्रुति कबीर का गुरु कहती है। महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय के संत नामदेव तो जैसे कबीर के आदर्श थे।

वेदान्त प्रवर्तित अद्वैतवाद में भक्ति का समावेश करते हुए रामानुज ने उसे विशिष्टाद्वैत रूप दे दिया। रामानंद ने निचली जातियों के लिए भी भक्ति के द्वार खोल दिये। फलस्वरूप भारतीय इतिहास के मध्य युग में शताब्दियों से निचली मानी जाने वाली जातियों ने पहली बार अपने संत पैदा किये। कबीर और उनके समकालीन रैदास, सेन, पीपा, धन्ना आदि सभी संत निचली जाति से आये थे। संत काव्य जैसा कि मुक्तिबोध कह गये हैं निचली जाति की सांस्कृतिक आत्मप्रस्थापना का काव्य है। वर्ण-भेद, जाति व्यवस्था, ऊंच-नीच, छुआ-छूत आदि को लेकर सिद्ध तो कबीर से बहुत पहले हिन्दू समाज की कड़ी आलोचना कर चुके थे। रूढ़ि-ध्वंस की परम्परा को और पैना बनाते हुए कबीर ने निचले जाति-समूह में आत्मगौरव का भाव जगाया। यह सांस्कृतिक आत्म-प्रस्थापना अपने आप में ही इतनी सनसनीखेज घटना थी कि ऊंची जाति से आये पहली पंक्ति के भक्त कवियों को भी उसके विरोध या अपने बचाव के लिए आगे आना पड़ा। स्पष्ट शब्दों में गोरखनाथ, वाममार्गियों और साखी-सबद उचारते कबीर पर कटाक्ष करके भी तुलसी को संतोष नहीं हुआ और उन्होंने अपने राम तक से कहलाया कि जीवधारियों में उन्हें सर्वाधिक प्रिय विप्र ही हैं। तन्मयता से भगवल्लीला गायन में लीन सूरदास जैसे शुद्ध काव्य के प्रणेता ने भ्रमर गीत की उद्भावना कर निर्गुण धारा के विरोध का अवसर निकाल लिया। मध्यकालीन काव्य का निर्गुण-सगुण विवाद एक तरह से उन दिनों के समाज की ऊंची-निचली जातियों के बीच के तनावपूर्ण संबंधों की ओर ही संकेत करता है।

सूर, तुलसी के आते तक तो जो भी कहना था साफ़-साफ़ कह कर कबीर ने तो वह डगर पकड़ ली थी जिस पर चलकर आदमी न तो मुड़कर पीछे देखता है न लौटकर आता है। वैसे भी वे न तो वेदांतियों के निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे न राम के सगुण रूप के ही। 'कहि कबीर गुरु मिलत महारस/प्रेम भगति विस्तार्यो रे।' प्रेम-रस का पान करके वह तो जीते जी मनुष्य से देवता हो गये थे।

क्या रूपातीत भी भक्ति का विषय हो सकता है? अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी नारद भक्ति सूत्र के हवाले से कहते हैं—  
क्यों नहीं। उसके लिए तो चाहिए केवल अनन्य प्रीति का भाव ही। शंकराचार्य और तुलसीदास जैसे ब्रह्मज्ञानी इसके जीते जागते उदाहरण हैं। ईश्वर विषयक परम अनुरक्ति को ही तो ब्रह्म-जिज्ञासा कहते हैं।

यहां आकर आचार्य जाने-अनजाने सदियों से समाज के बरजोर वर्ग के आखेट कमजोर वर्ग की पीड़ा-जन्य ललकार को अनसुना कर जाते हैं जो मेरे ख्याल से कबीर-काव्य का मूल स्वर है। ब्रह्म-जिज्ञासा से उन्हें जोड़ देने से कबीर और उन संत-भक्तों में भला क्या अंतर रह जायेगा, व्यक्तिगत मोक्ष ही जिनका काम्य रहा है? ऐसा करना कबीर जैसे नॉन-कन्फर्मिस्ट को कन्फर्मिस्ट बना देना है। निर्गुण ब्रह्म के बजाय उन्हें उस राम से जोड़ना मुझे अधिक विवेक-सम्मत लगता है जो उनके अंतस में रहता है और जिसे वे कस्तूरी मृग और अन्यान्य रूपकों द्वारा व्यक्त करते हैं। जिसे वे राम कहते हैं वह वस्तुतः उन्हीं का आत्मबोध और जीवन-बोध है—

*'ऐसा कोई ना मिल्या, रामभगति का मीत।*

*तन सौपे मृग जिमि, सुने बधिक का गीत।'*

चरम-तन्मयता में मंत्र-विद्ध मृग जिस तरह वध की संभावना से तनिक भी विचलित नहीं होता कुछ वैसे ही जाति, धर्म, सम्प्रदाय और मुफलिसी के दोजख से आकंठ धिरे कबीर मनुष्य की समग्र मुक्ति के स्वप्न को ही तो सबद देते हैं। अतिशय संवेदनशील विवेक की नम आंच है उनकी कविता। उनका सारा समर्पण, सारी आकांक्षा, सारा निवेदन, अन्न-जल से क्षीण-दीन के आत्मगौरव से भरी मनुष्य-मूर्ति को गढ़ने और विश्व-

मंदिर में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करने की एकलक्ष्यता से आपूरित है।

भारतीय समाज में परस्पर विरोधी विचारधाराओं और जीवनादर्शों के बीच द्वन्द्व और समाहार की प्रक्रिया के निरंतर जारी रहने के कारण यदि कबीर-काव्य में वैदिक रूढ़ियों के निषेध के साथ-साथ अवैदिक रूढ़ियों की ओर किंचित झुकाव दीख पड़ता है तो इसमें भला क्या आश्चर्य है। मैं समझता हूँ कि कमोबेश अन्तर्विरोध हमारे यहां के सभी कवियों में देखे जा सकते हैं जिसके लिए शायद हमारी जातीय चेतना ही जिम्मेदार है जो द्वन्द्वों का हल समन्वय और संतुलन के धरातल पर ढूंढती है। हमारे यहां दो विरोधी विचारधाराओं को अलग करने वाली रेखा सरल न होकर सर्पाकार है। परस्पर विरोधी विचारों और आदर्शों की ओवरलैपिंग को बरकाना किसी भी कवि के लिए आसान नहीं। बड़े कवि के लिए तो यह और भी मुश्किल है। इस सिलसिले में वाल्ट हिक्टमैन की पंक्तियां याद आ रही हैं—'क्या मैं अपना निषेध कर रहा हूँ? बहुत अच्छा, मैं अपना निषेध कर रहा हूँ/मैं विशाल हूँ/मुझमें बहुलता है।' कबीर में परस्पर विरोधी विचारों की ओवरलैपिंग का एक प्रमुख कारण भी यही जान पड़ता है कि उनमें भावादर्शी और जीवनादर्शों की बहुलता थी।

कबीर में आयी दैहिक-यौगिक क्रियाओं और षट्चक्रभेदन के साथ सहस्रार चक्र तक का यात्रा-वृत्तांत केवल आनुष्ठानिक कर्म न होकर मनुष्य के अपने भीतर की अनंत संभावनाओं को टटोलकर जगाने और सक्रिय करने का भी उपक्रम है। सुप्त कुंडलिनी की जाग्रति भी मनुष्य की प्रसुप्त अन्तर-शक्ति की जाग्रति है जिसके बिना वह आत्मसंधान की दिशा में आगे नहीं बढ़ सकता। आत्मशोधन ही मन के परिष्कार का प्रमुख साधन है। मन बदल जाये तो समाज के बदलने में भला कितना वक्रत लगेगा। मुझे तो योग-साधना के बजाय मानव-मन का परिष्कार ही कबीर का काम्य लगता है। 'मन न रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा' जैसी उक्तियां इसी ओर संकेत करती हैं।

## चार

ज्ञान बेशक ज़रूरी है। उसके बिना अंधेरा कैसे कटेगा। समाधि भी ज़रूरी है। चित्तवृत्ति की एकाग्रता के बिना लक्ष्य तक कैसे पहुंचा जा सकेगा। लेकिन सहज नहीं हुआ तो ज्ञान स्वायत्त कैसे होगा और समाधि सहज नहीं हुई तो आम आदमी से सधेगी कैसे। पेशे, रहन-सहन और सामाजिक हैसियत से कबीर ठेठ आम आदमी थे। कामगार होने का तनिक भी मलाल उन्हें नहीं था। उलटे अभिजात संस्कृति और अभिजात्यों की सामाजिक संस्थाओं का अंग नहीं होने का गर्व था। उनका काव्य इसीलिए आत्म-प्रतीति की सीमा को छूने वाले आत्मविश्वास से ओतप्रोत है। ऐसा आत्म-विश्वास जन-साधारण का होने और अपने अनुभव को समाज के अनुभव से सम्पृक्त कर बड़ा बनाने के बाद ही पैदा हो सकता है। शास्त्र के कांतार में भटकने की न तो उन्हें सुविधा थी, न फुरसत, न ज़रूरत ही। सारे धर्म-सम्प्रदायों के कर्मकांडों से मुक्त कबीर अपने जैसों के लिए एक सीधी सरल पगडंडी ढूंढकर बीहड़ में निकल पड़ते हैं। पोथी बांधने वाले पंडित से बढ़कर आत्मवंचना का शिकार भला कौन है! मुक्ति का मार्ग न ब्राह्मण के घर से होकर जाता है न मुल्ला के। आत्मज्ञान के लिए एक ही चीज़ ज़रूरी है—प्रेम।

*पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय।*

*ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय*

प्रेमानुराग ही कबीर के काव्य का मूल तत्त्व है। ज़रूरी नहीं कि यह प्रेमानुराग सूफ़ियों से उनके यहां आया हो। समूचा भारतीय काव्य उससे पटा पड़ा है। प्रेम में मादकता का भाव हो सकता है सूफ़ियों से आया हो। बहरहाल, आग काठ के भीतर होती है। ज़रूरत सिर्फ़ थोड़ा सुलगाने की है। फिर तो वह बात की बात में इतनी फैल जायेगी कि सम्पूर्ण चराचर उससे दीप्त हो उठेगा। सारे विग्रह का मूल है अहंकार। यह मेरे-तेरे का भाव। प्रेम सारी दूरियां मेट देता है। पूरा पाने के लिए तो अपने को पूरा-पूरा ही देना होगा। तिलभर भी अपने को बचाये बिना अपने को निःस्व कर देना ही प्रेम है—

कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं।  
सीस उतारे भुईं धरै सो पैटे घर माहिं।

विलयन ही विस्तार है। ऐसे ही तो बूंद समुद्र बनती है। अहंकार का विसर्जन मन में लघुता का भाव अपने से बड़े से जोड़कर हमें बनाता है। दुनियावी अर्थों में बड़ा होना कबीर के लिए कोई मानी नहीं रखता—

प्रभुता से लघुता बड़ा प्रभुता से प्रभु दूर।  
चींटी लै साकर चली हाथी के सिर धूर।

बड़ा होना कबीर के लेखे अंतहीन होना है। अपने को तृणवत कर लो। आकाश हो जाओगे—

उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।  
तिनका तिनके से मिला तिनका तिनके पास।

यदि भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है तो प्रेम के सिवा भला और क्या हो सकता है उसका रस। प्रेम-भावना से आपूरित मन को ही तो वैष्णव मन कहते हैं—

कबीर बादल प्रेम का हम पर बरस्या आई।  
अंतरि भीगी आतमा हरी भई बनराइ।

ऐसा मन पाये बिना कोई कवीश्वर नहीं हो सकता। वे मनुष्य का मन गढ़ने का संकल्प लेकर चले थे, समाज-सुधार का साधारण-सा काम करने नहीं। द्विवेदी जी भी उन्हें समाज सुधारक तो नहीं मानते लेकिन 'व्यक्तिगत साधना का प्रचारक' जरूर कह गये हैं। ऐसा कहते हुए जैसे वे जंजीर से बंधे कबीर को उससे मुक्त करते हुए रेशम की डोर से बांध ही देते हैं जबकि प्रेम भगति ने उन्हें आत्म-केन्द्रित क्रतई नहीं बनाया। उसमें डूबकर वे न कभी तत्काल से कटे न दिक्काल से। उनके अध्यात्म की दुनिया सामाजिक व्यवहार की दुनिया से क्रतई अलग नहीं है।

शास्त्र और सम्प्रदाय का निषेध आध्यात्मिक चिन्तन को नया आयाम ही नहीं देता, वह पूरे सामाजिक जीवन को भी बहुत भीतर से प्रभावित करता है। निचली जाति से आये संतों ने जो धार्मिक आन्दोलन छेड़ा था उसके कुछ निश्चित सामाजिक सम्पृक्तार्थ थे। उन्होंने बताया, भगवान की दृष्टि में सभी बराबर हैं। ब्राह्मण सुगति का अधिकारी है तो उससे कम यह अधिकार शूद्र का भी नहीं है। मोक्ष का अधिकार मांगते हुए यदि शूद्र आज वर्णाश्रम व्यवस्था को चुनौती दे सकता है तो कल

आर्थिक-सामाजिक बराबरी के लिए भी संघर्ष कर सकता है। इस खतरे को ध्यान में रखते हुए ही कबीर का विरोध होता रहा हो तो आश्चर्य नहीं। वर्णाश्रम व्यवस्था ही तो हिन्दू समाज का आधार है। उसपर आघात करना उसकी बुनियाद पर चोट करना है। कबीर का विद्रोह उनकी धार्मिकता का बाय-प्राइवेट नहीं है, जैसा कि द्विवेदी जी कहते हैं, बल्कि, मेरी विनम्र सम्मति में, उनकी जुझारू आध्यात्मिकता ही उनके इस सामाजिक विद्रोह से उपजी है। अपने पूर्वग्रहों और रूढ़िसम्मत विचारों के चलते वर्णाश्रम व्यवस्था के कट्टर समर्थक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो कवि के तौर पर भी उन्हें उचित स्थान देने में कृपणता दिखाई। आचार्य द्विवेदी ने इस अन्याय का निराकरण तो निःसंदेह बहुत अच्छे से किया लेकिन भक्त रूप को वास्तविक बताकर उन्होंने भी जाने-अनजाने कबीर के विद्रोही रूप को हाशिये में डाल ही दिया। ऐसा सदा से हमारे देश में होता आ रहा है। विरोध को समाप्त करने की चेष्टा में विफल होने पर हिन्दू समाज अपने प्रबल विरोधी को भी संत और अवतार मानकर पंक्तिबद्ध कर लेता है। जो बुद्ध के साथ हुआ था, ठीक वही द्विवेदी जी ने कबीर के साथ किया।

जगत को मिथ्या और सारहीन कहने पर भी मैं कबीर के बैरागी रूप को इसलिए आनुषंगिक मानता हूँ क्योंकि उसकी तुलना में उनका सामाजिक विद्रोह मुझे कहीं अधिक खरा और खालिस लगता है। साधनात्मक रहस्यवाद के उनके ढेर सारे पदों के बावजूद मुझे यह भी मानते नहीं बनता कि उनका लक्ष्य केवल व्यक्तिगत मोक्ष था। उनकी धार्मिक भावना इसलिए अग्राह्य नहीं लगती क्योंकि वह मुझे पूरी तरह मानवीय विवेक-सम्मत लगती है, शास्त्रसम्मत क्रतई नहीं। तमाम आनुषंगिक भावादशों के परे साधारण मनुष्य की सम्पूर्ण मुक्ति को ही मैं कबीर की केन्द्रीय चिन्ता मानता हूँ।

## पांच

संत काव्य सही अर्थों में जन-साहित्य है जिसके रचयिता सामान्य हैसियत के लोग थे। कुलीनों की जीवन-पद्धति और सामाजिक व्यवस्था के प्रतिरोध में खड़े कवि भला काव्य के क्लेसिकी प्रतिमान के अनुरूप

रचना-कर्म में क्योंकर प्रवृत्त हो सकते थे। उन्हें न तो रमणीय अर्थ के प्रतिपादक अर्थ की तलाश थी न रसात्मक काव्य की ही। आदमी से एक दर्जा नीचे आंके जाने का अपमान सदियों से उनके भीतर सुलग रहा था। कबीर की कविता वस्तुतः ऊपर-ऊपर से शांत दीखते ज्वालामुखी का विस्फोट है। जिस विस्फोट से आधार ही प्रकम्पित हो उठे उससे क्या अधिरचना न कांप उठेगी। चिन्तन के क्षेत्र में शास्त्र के बजाय आत्मानुभव को प्रमाण मानने वाले कवि क्लेसिकी काव्य-शास्त्र की भला कितनी परवाह करते। सहज ज्ञान और सहज साधना के अनुरूप कबीर की कविता भी सरल बुनावट की बेहद जटिल और अनेकार्थी कविता है जिसकी अनुगूँजे दूर-दूर तक सुनाई पड़ती हैं। वह अपने और अपने जैसों की मानवीय गरिमा से विरहित होने का बयान और उनसे उनका ईश्वर ही छीन लेने वाली ताकत के विरुद्ध धर्मयुद्ध की घोषणा है। वह साफ़-साफ़ ही देख रहे थे—दुनिया दो भागों में बंटी है। जाहिर है शास्त्र-सम्मत और मनुष्य-सम्मत दुनिया के रहवासियों के मन भी अलग-अलग ही होंगे—

मेरा तेरा मनुवा कैसे होइ एक रे।

मैं कहता हूँ आँखिन देखी तू कहता कागद की लेखी।  
मैं कहता सुलझावनहारी तू राख्यौ अरुझाई रे।  
मैं कहता हूँ जागत रहियो तू रहता है सोई रे।

बहुधा कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य की मूल चेतना धार्मिक-आध्यात्मिक है। बात बहुत गलत नहीं होकर भी अधूरे सत्य का निदर्शन करने की वजह से गले नहीं उतरती क्योंकि यह केवल इतना ही कहकर रह जाती है कि कबीर और तुलसी जैसे कवियों के काव्य का रचाव धार्मिक-आध्यात्मिक था; यह नहीं बताती कि मध्ययुगीन संतों और भक्तों ने धर्म और अध्यात्म जैसे लोकातीत तत्त्वों को ठेठ मानवीय रूप में प्रस्तुत किया। क्या यह कहना भी ज़रूरी नहीं है कि धर्म और अध्यात्म हमारे यहां मानवीकरण की प्रक्रिया के एक अंग के रूप में स्वीकृत और मान्य हुए थे? और यह भी कि मध्ययुगीन कवियों का संसार फंतासी मूलक होकर भी न तो अतीन्द्रिय था और न

मनुष्यातीत ही। देवता को मनुष्य बनाकर, नारायण में नर की प्रतिष्ठा कर, मध्ययुगीन साधकों ने क्या प्रकारांतर से मानव को ही गरिमा प्रदान नहीं की? हृद् को बेहद करने का, खुद को और अपने युग को भी फलांगने का हौसला कबीर को तो उस आने वाले युग से भी सीधे जोड़ देता है जिसकी चिन्ता के केन्द्र में धार्मिक मतवाद के बजाय मानवता है। योगपरक रूपकों, उलटबासियों और रहस्यवादी प्रतीकों में रची-बसी उनकी कविता इसीलिए पूरम्पूर मानवीय सरोकार की कविता लगती है। इसीलिए छह सौ बरस पहले के होकर भी कबीर हमारे ही समकालीन और उनकी कविता भी हमारे अपने समय की कविता जान पड़ती है। यह भी तो सोचिए, जिसका सारा जीवन राम-राम रटते शिव की नगरी में बीता वह मगहर जाकर प्राण त्यागने की बात करता है—‘जो काशी तन तजै कबीरा रामहिं कौन निहोरा’ कहते हुए ठेठ आधुनिकों की तरह वे जिन्दगी की आखिरी लड़ाई अपने राम से ही लड़ लेना चाहते हैं। मन-वचन-कर्म से मुक्तिदाता के पदचिह्नों पर चलते हुए जो उसका प्रतिरूप ही बन गया उसके लिए क्या मगहर और क्या काशी। ऐसी धार्मिकता से भला किस संशयवादी, या अधार्मिक का ही विरोध हो सकता है।

कबीर की वाणी में जैसे हमारी जातीय अस्मिता ही बोलती है। इसलिए वह मुझे बहुत भीतर तक हिला देती है। अनेकानेक जातियों-धर्मों के महीन धागों से बुना यह देश ही कबीर की चदरिया है जिसे अपनी वंश-परम्परा को सौंपते हुए जैसे वे चेतावनी भी देते चलते हों—सावधान, इसका एक भी धागा न टूटे, ज़रा भी दाग न लगे, याद रखो धर्म की आधी-अधूरी समझ अधर्म और विनाश की ओर ले जाती है। लिहाजा अपने राग का विस्तार कर अनंत को छू-छू कर कबीर स्थायी पर ही वापस होते हैं—‘अरे इन दोउन राह न पायी।’

बनाया होगा रससिद्ध कवियों को उनकी कविता ने, कालसिद्ध तो कबीर को उनके समय ने ही बनाया।

(श्री प्रभाकर श्रोत्रिय द्वारा सम्पादित ‘कबीरदास : विविध आयाम’ से साभार)

## दो पाटों के बीच

लेखक—श्री सदानन्द शाही

*चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय  
दुई पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय*

कबीर का यह दोहा एक विराट रूपक है। कबीर के समय के संदर्भ में भी और आज के संदर्भ में भी। कई तरह के द्वैत तब भी थे और अब भी हैं, जिनमें साधारण मनुष्य पिस रहा था और पिस रहा है।

ऐसे द्वैत भीतर भी थे, बाहर भी। मनुष्य के सामने डगमग बना हुआ था। इधर जायें कि उधर। आगे कुआं, पीछे खाई वाली स्थिति थी। लोक की चिंता करें कि परलोक की। सगुण का ध्यान करें कि निर्गुण का। शास्त्र जितने मुंह उतनी बातें बोलने वाले थे। धर्म के भी दो रूप थे। एक तरफ कर्मकांड था, तीर्थ-व्रत थे, छुआछूत थी, जात-पांत था और इनसे जुड़े पाखंड थे। दूसरी तरफ मेहनतकश गरीब जनता के दुख-दर्द और अभाव थे, लोक और परलोक दोनों की चिंता थी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर के समय में धर्म की सत्ता आज की तुलना में ज्यादा प्रबल रही होगी। राजधर्म होने के नाते इस्लाम का प्रभुत्व था ही। हिंदू भले राज्यच्युत हो गये हों, धर्म के ठेकेदारों का वर्चस्व यथावत रहा होगा। आश्चर्य नहीं कि राजनीतिक पराभव ने हिंदुओं के धार्मिक भाव को प्रखर बना दिया हो। दोनों धर्मों के अपने कर्मकांड थे, अपने-अपने पाखंड थे, दोनों में ही खाने और दिखाने के अलग-अलग दांत थे। ऐसे कठिन पाटों के बीच पिसने के लिए सामान्य जनता अभिशप्त रही होगी।

यह देखकर कबीर रो उठते हैं। कबीर का रोना भी एक प्रतीक है। यह रुदन जितना आत्मिक है, उतना ही सामाजिक भी।

*सुखिया सब संसार है खाये और सोवे  
दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।*

यह जागे हुए व्यक्ति का रोना है। दुनिया खा रही है और सो रही है और निरंतर एक चक्की में पिसती चली जा रही है। जो पिसे जा रहे हैं, उन्हें इसका भान नहीं है

कि वे पिसे जा रहे हैं। कबीर जगे हैं और देख रहे हैं—समझ रहे हैं। इस तरह सोये हुए होने पर, जिसमें स्वयं के पिसे जाने का एहसास नहीं है, कबीर रो रहे हैं। कबीर का यह रोना जागरण का छंद है। यह कोई आसान रोना नहीं है :

*सोई आँसू साजना, सोई लोक विडोँहि  
जो लोइन लोहू चुवै, जानो हेत हियाहिं*

वही आंसू साधारण प्रेम में निकलते हैं, वही प्रियतम के प्रेम में निकलें तो क्या बात हुई। जब रोने में आंखों से लहू के आंसू निकलें, तब सच्चा प्रेम जानिये। कबीर के चार सौ वर्ष बाद संक्रमण के एक दूसरे दौर में गालिब भी कहते हैं : यह रोना आसान नहीं है—इस रोने के लिए काफी साहस चाहिए, हिम्मत चाहिए:

*ऐसा आसाँ नहीं लहू रोना*

*दिल में ताकत जिगर में हाल तो हो*

कबीर इसी ताकत और जज्बे के साथ रोते हैं। इसलिए यह कोई साधारण रुदन नहीं है। यह युगांतरकारी रुदन है। इस रुदन में बुद्धि की करुणा है। पीड़ा और बेचैनी के लिए लहू का एक-एक कतरा निचोड़ कर दे देने का संकल्प है। इसीलिए यह निष्क्रिय रुदन नहीं, सक्रिय हस्तक्षेप है। अज्ञान-जनित अबोधपन पर मार्मिक व्यंग्य भी है। यहीं पर कबीर का कबीरत्व जाग्रत होता है। वे दो कठिन पाटों के बीच साबुत खड़े होने की चुनौती स्वीकार करते हैं और चलती हुई चक्की के बीच मानो अड़ जाते हैं, समय की चलती चक्की को उलट देने के लिए। बहती हुई युग धारा को बदल देने, मोड़ देने के लिए। कबीर इसीलिए युगांतरकारी है।

आज भी धार्मिक, राजनैतिक पाखंड और नग्न उपभोक्तावाद के कठिन पाटों वाली चक्की चल रही है। असहाय सामान्य जन पिसने के लिए अभिशप्त है। आज स्वयं पिसे जाने का खतरा उठाकर समय की चक्की में अड़ जाने के लिए कौन है?

उपभोक्तावाद-नग्न उपभोक्तावाद का दर्शन मुक्त बाजार व्यवस्था के रूप में प्रकट हुआ है। चकमक करता चकाचौंध फैलाता। प्रभु वर्ग ने उसे ऐसे परोसा है, मानो दुख से मुक्ति का यही उपाय है। एक दुनिया है, जो यह चकाचौंध फैला रही है। दूसरी दुनिया है, जो इस चकाचौंध की ओर बेतहाशा भाग रही है। एक ऐसी भी दुनिया है, जो इस चकाचौंध में जल रही है। कबीर के समय की माया नये तरह से अवतरित हो रही है। माया का यह गुण-धर्म है कि वह आभास तो देती है सुख का, पर वास्तव में दाह उत्पन्न करती है। मुक्त बाजार व्यवस्था की माया भी ठीक ऐसी ही है। यह इसी नारे के साथ आयी कि मुक्ति यहां है, सुख यहां है और जो इस सुख की ओर लपके तो पाया कि यहां दाह है, विनाश है, किसानों-मजदूरों की चीखें हैं, आत्महत्याएं हैं। दारुण दंश है। कबीर कहते हैं :

*ओ नई आई बादरी, बरसन लगा अंगार  
उठि कबीर धाह दे, दाझत है संसार*

बादल घिर आये, तो लोगों ने सोचा, पानी बरसेगा। तपन मिटेगी, प्यास बुझेगी, पृथ्वी सजल होगी, जीवन का दाह मिट जायेगा, किंतु हुआ ठीक उलटा। यह दूसरे तरह के बादल हैं, इनसे पानी की बूंदें नहीं, अंगारे बरस रहे हैं, संसार जल रहा है। कबीर ऐसे छल-बादल से संसार को बचाने के लिए बेचैन हो उठते हैं।

खेद है कि हमारे समय में ऐसे छल-बादलों के त्रास से उबारने के लिए कोई नहीं है। कहने को अनेक राजनीतिक दल हैं, राजनेता हैं, पर उनकी कथनी कुछ और है, करनी कुछ और है। मुख कुछ और हैं, मुखौटे कुछ और। ये भी छल-बादल हैं। दुख, गरीबी, बदहाली, असमानता के खिलाफ लड़ते चले आ रहे हैं, उनकी लड़ाई जितनी तेज हो रही है, सारी चीजें दिन-दूनी रात-चौगुनी गति से बढ़ रही हैं। बुद्धिजीवी वर्ग के पास घड़ियाली आंसू भी नहीं बचे हैं, अपनी सुविधाओं के लिए बेशर्म कशमकश है। मठ हैं, महंत हैं, संत हैं, फकीर हैं, सबके पास अपने-अपने स्वार्थों की गठरी है, सब उसमें जल रहे हैं।

*ऐसा कोई ना मिला जासो रहिए लागि  
सब जग जरता देखिया अपनी अपनी आगि*

यह जन सामान्य की असहायता का करुण गान है। कबीर अपने समय में ऐसे की तलाश कर रहे थे, जो अपनी आग में न जल रहा हो, बल्कि जिसमें दूसरे को आग से बचाने की क्षमता हो। जहां पहुंचकर शांति पायी जा सके। जिसके साथ लग कर रहा जा सके।

मुक्ति के केंद्र काशी में कबीर को ऐसा कोई नहीं मिला और वे ऐसे की तलाश करते हुए मगहर ऊसर में आये। कबीर का मुक्ति के, ज्ञान के केंद्र काशी से मगहर आना भी एक प्रतीक है। कबीर शायद यह जान चुके थे कि तथाकथित उदात्त, विराट, महान और पवित्र में मुक्तिदायिनी क्षमता नहीं है। मुक्तिदायिनी क्षमता क्षुद्र, अनाम और सामान्य में है। काशी के पंडितों को छोड़कर कबीर का मगहर के बुनकरों के बीच आना एक बड़ा अर्थ संकेत है। एक तरफ ब्रह्मज्ञान का पाखंड है, दूसरी तरफ श्रम की साधना है। कबीर चलती हुई चक्की को यहां भी उलटते हैं। जिस समाज में श्रम करने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता हो, उस समाज में श्रम को मुक्ति के विधान के रूप में प्रतिष्ठित करना एक बड़ी चुनौती थी। इसलिए वे श्रमपूर्ण सामान्य जीवन को आडंबरपूर्ण भव्यता की तुलना में श्रेष्ठ मानते हैं।

सामान्य के प्रति कबीर का यह आग्रह ऐसा है कि जिस राम की महानता की इतनी चर्चा हो, स्वयं कबीर जिसके प्रेम में पागल हैं, वह कोई महान् या विराट सत्ता नहीं है। वह परमप्रिय भी प्रायः समकक्ष ही है।...

...कबीर राम की विराटता का ऐसा भव्य सांचा नहीं बनाते कि सामान्य आदमी स्वयं को तुच्छ और अकिंचन समझे। कभी-कभी खिलंदड़े अंदाज में कह उठते हैं—

*छोटा कहूँ तो बहु डरौं बड़ा कहूँ तो झूठ  
मैं क्या जानूँ राम को नैना कबहूँ न दीठ*

छोटा कहने में डर लगता है। बड़ा कहें तो झूठ होगा। जिसे आंखों से देखा नहीं सिर्फ अनुभव से जाना है, उसके बारे में वे कोई बड़ा तूमार नहीं बांधते। वे कुंडलि में कस्तूरी की तरह बसने वाले राम को निजी



और एकांतिक अनुभव से सार्वजनीन अनुभव में बदल देने के लिए बेचैन दिखाई पड़ते हैं। जहां राम मंदिरों और मस्जिदों की दीवारों में कैद हों और उन पर कुछ विशिष्ट वर्गों का इजारा कायम हो, वहां कबीर—

*मेरा मन सुमिरै राम को मेरा मन रामहि आहि।*

*इब मन रामहि ह्वै चला सीस नवावों काहि*

कह कर रामत्व को मनुष्यत्व का पर्याय बना देते हैं। गर्व मिट जाता है। क्षुद्रता लुप्त हो जाती है। मनुष्य और राम का भेद मिट जाता है। कबीर की व्यथा इसी रामत्व को प्रकट करने की है। ऐसा रामत्व, जो जीवन देने वाला है—भय, संत्रास और अभाव से मुक्त जीवन। इसी का संधान करने के लिए कबीर पर्वत-पर्वत घूमते हैं, रो-रो कर नैन गंगा बैठते हैं, पर वह बूटी, वह उपाय नहीं मिलता, जिससे जीवन संभव हो :

*परबत परबत मैं फिरा, नयन गँवाया रोय।*

*सो बूटी पाऊँ नहीं, जाते जीवन होय*

ध्यान रहे कि यह परबत-परबत घूमना हिमालय या विंध्य या अरावली की पर्वत श्रृंखला नहीं है, वे तथाकथित समकालीन महानताएं हैं जो जीवन देने का दावा करती हैं, मुक्ति का उपाय बताने का दंभ भरती हैं, पर वहां जाकर नैन गंगाने के अलावा और कुछ नहीं मिलने वाला है। कबीर उस बूटी की तलाश में हैं, उस सूत्र की तलाश में हैं, जिससे जीवन का गुणखंड हल हो। सारे पर्वत छानने के बाद कबीर इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि मुक्ति का कोई बना-बनाया रास्ता नहीं है। इसलिए नये रास्ते की तलाश करनी होगी।

नये रास्ते की तलाश, नये राह का निर्माण भी कोई आसान काम नहीं है। अपना घर जला कर नये रास्ते की तलाश में निकलना होगा। संचित मोह, भ्रमित आस्थाएं, प्रत्येक तरह के पूर्वाग्रह सब कुछ को जला कर निकलना होगा। महानता के अपने दुर्ग या मठ से बाहर निकलना होगा। जन सामान्य के बीच में जाकर पुकार लगानी होगी। कबीर ऐसी पुकार लगाते हैं :

*कबीरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।*

*जो घर जारे आपना, चले हमारे साथ*

कबीर के समय में घर जलाने से काम चल सकता था, आज घर के साथ बाजार को भी जलाना आवश्यक

है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर के समय में बाजारों की एक सकारात्मक भूमिका थी। बाजारों की उपस्थिति से किसान-कारीगर वर्ग बंद सामंती व्यवस्था के बरक्स अपना स्वतंत्र आर्थिक आधार विकसित कर रहा था। इसी आधार पर इस वर्ग ने सापेक्षिक स्वायत्तता अर्जित की। इस स्वायत्तता ने किसानों-कामगारों के खोये हुए आत्मसम्मान को नवजीवन प्रदान किया। इन वर्गों ने अपने नेता और संत पैदा किये। इन संतों ने वर्ण और जाति के आधार पर बरते जाने वाले स्तर भेद को चुनौती दी। मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद-बुद्धि का निषेध किया। उत्तर भारत में कबीर इन्हीं संतों के अग्रदूत थे। अभिप्राय यह कि कबीर के समय में बाजार ने एक क्रांतिकारी भूमिका अदा की। सामंती व्यवस्था में धार्मिक कर्मकांड और तज्जनित पाखंड ने मनुष्य की सत्ता को छोटा करने की चेष्टा की थी। बाजार ने किसानों-कामगारों को सापेक्षिक स्वायत्तता प्रदान कर मनुष्य को उसकी स्वाभाविक ऊंचाई प्रदान की थी।

आज बाजार की भूमिका उलट गयी है। आज बाजार की शक्तियां मनुष्य को छोटा करने के लिए सन्नद्ध हैं। बाजार ने जीते-जागते मनुष्य को पण्य वस्तु में बदलकर उसे लघु मानव बना दिया है। इसलिए आज के मनुष्य की लड़ाई जितनी सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखंड और उन्माद से है, उतनी ही बाजार के वर्चस्व से है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीर का साहित्य और कबीर का संघर्ष मनुष्य को आदमकद बनाने की सतत चेष्टा है। कबीर मनुष्य को छोटा बनाने की इजाजत किसी को नहीं देते चाहे वे धार्मिक-सामाजिक कुरीतियां हों, राजनीतिक सत्ता हो, शास्त्र ज्ञान का आतंक हो, माया की चकाचौंध हो, या फिर स्वयं उनके अपने राम ही क्यों न हों।

इसलिए आज जब बाजार की माया और धर्म का बाजार मिलजुल कर मनुष्य को नये सिरे से लघु मानव में तब्दील करने की कोशिश कर रहे हैं, कबीर नयी अर्थवत्ता के साथ मनुष्यता के पक्ष में एक विराट प्रकाश पुंज की तरह दिखाई दे रहे हैं।

इसलिए यदि आज हर कोई कबीर की ओर उम्मीद से देख रहा है, तो उचित ही है। यहीं पर यह कहना आवश्यक है कि यह उचित तो है पर आसान नहीं है। यदि कबीर को आसान समझा गया और उन्हें केवल लेबल समझा गया तो खतरा है कि बाजार की शक्तियां स्वयं कबीर का इस्तेमाल कर ले जायें। यह केवल कपोल कल्पना नहीं है। इस तरह के प्रयत्न दिखाई भी दे रहे हैं। दलित आंदोलन के उभार के दौर में कुछ लोग कबीर को दलित चेतना के प्रतीक के रूप में देख रहे हैं। इसलिए राजनीतिक हलकों में कबीर में वोट की संभावना भी निहारी जा रही है। समतावादी विचारों के दुश्मन और वर्ण व्यवस्था के समर्थक भी कबीर को सामाजिक अभिप्राय से विरत कर केवल उनके अनहद नाद को ले उड़े हैं। संसद के अंकगणित का कागजी गुणनखंड हल करते-करते स्वयं को अप्रासंगिक बना चुकी कम्युनिस्ट पार्टियां भी कबीर के मुक्तनाद का झंडा लेकर स्वयं को प्रासंगिक बनाने में लगी हैं।

किंतु लाख टके का सवाल यह है कि क्या कबीर सचमुच इतनी आसानी से पचाये या भुनाये जा सकते हैं? क्या कबीर का अनुगामी होना इतना आसान है? शायद नहीं। कबीर का रास्ता वे ही चुन सकते हैं, जो अपनी संकीर्णताओं और क्षुद्रताओं के घर को जलाकर बाजार की माया का दांत उखाड़ने के लिए प्रस्तुत हों। तकनीक और धार्मिक-सामाजिक कर्मकांडी उन्माद में पीसे जाते हुए मनुष्य की वेदना से जिनकी आत्मा विसूर रही हो। जो माया की चकाचौंध से गाफिल नहीं हैं, जाग रहे हों और सामाजिक व्यथाओं को देख रहे हों और सब कुछ को बदल देने की अपराजेय विकलता के साथ काशी (केंद्र) को छोड़कर मगहर (परिधि पर) आने का जोखिम उठाने को तैयार हों।

हमारे समय में मनुष्यता की मुक्ति के लिए ऐसी ही शक्तियों का इंतजार है। इसलिए आज कबीर को याद करने का अर्थ ऐसी ही शक्तियों का संधान करना है। अपने भीतर-अपने बाहर।

(श्री राजकिशोर द्वारा संपादित—'कबीर की खोज'  
से साभार)

## इंसान बनाओ

रचयिता—लखन प्रतापगढ़ी

न हिन्दू बनाओ न मुसलमान बनाओ।  
है आप को बनाना तो इंसान बनाओ

राम व रहीम सभी नाम एक है।  
हैं धर्म अलग-अलग मगर काम एक है।  
सबका वही उद्देश्य व पैगाम एक है।  
ईश्वर, खुदा, अल्लाह और राम एक है  
स्वरूप सभी का एक इसका ज्ञान कराओ।  
है आप को बनाना तो इंसान बनाओ

हिन्दू हो मुसलमान चाहे सिक्ख ईसाई।  
सभी का एक रूप है सभी हैं सगे भाई।  
निज स्वार्थ के चक्कर में कई जाति बनाई।  
आपस में यहाँ लोग करते व्यर्थ लड़ाई  
शान्ति व सौहार्द का अभियान चलाओ।  
है आप को बनाना तो इंसान बनाओ

निर्भीक बना मानव कल्ले आम कर रहा।  
आतंकवादी बन के ऐसा काम कर रहा।  
धर्म के भी नाम को बदनाम कर रहा।  
अन्याय, अत्याचार सुबह शाम कर रहा  
इंसानियत का उसको तुम सम्मान सिखाओ।  
है आप को बनाना तो इंसान बनाओ

उसमें अब तो दिखता सदाचार नहीं है।  
ईमान सत्यनिष्ठा का व्यवहार नहीं है।  
राष्ट्र प्रेम सेवा का विचार नहीं है।  
दीन-हीन लोगों का उपकार नहीं है  
प्रेम सदभाव का उत्थान कराओ।  
है आप को बनाना तो इंसान बनाओ

धर्म बदलना तो एक नकली खेल है।  
फायदे का केवल यह ताल मेल है।  
नेकी की राह चलो बस यही धर्म है।  
हो सबका भला जिसमें वही कर्म सही है  
करके फिजूल कर्म मत ध्यान बटाओ।  
है आप को बनाना तो इंसान बनाओ

# व्यवहार वीथी

## प्रतिकूलता को जीयें

किसी कलाकार, खिलाड़ी, गायक, संगीतज्ञ, डॉक्टर, लेखक, वैज्ञानिक, समाजसेवी को समाज में विशिष्ट मान-सम्मान या पुरस्कार प्राप्त करते देखकर किसके मन में यह इच्छा नहीं होती कि काश! ऐसा मान-सम्मान या पुरस्कार मुझे भी मिलता तो कितना बढ़िया होता। हर आदमी के मन में समाज में विशिष्ट मान-सम्मान, पुरस्कार प्राप्त करने या किसी दिशा-क्षेत्र में विशेष योग्यता-सफलता प्राप्त करने की इच्छा होती है, परंतु उस विशिष्ट मान-सम्मान, पुरस्कार, योग्यता, सफलता, विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए जिस त्याग-तप, साधना, समर्पण, उत्साह, लगन, धैर्य, साहस एवं अटूट परिश्रम की आवश्यकता होती है उसके लिए बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है और बहुत कम लोग उसके लिए तैयार होते हैं।

एक संगीतज्ञ के संगीत से प्रभावित होकर एक युवक ने उनके पास जाकर कहा कि क्या मैं भी आपके जैसा संगीतज्ञ बन सकता हूँ? संगीतज्ञ ने कहा—तुम मेरे जैसा नहीं, मुझसे अच्छा संगीतज्ञ बन सकते हो। बस इसके लिए तुम्हें - वर्षों तक लगातार नियमित रूप से धैर्यपूर्वक अभ्यास करने की आवश्यकता है। यह सुनकर वह युवक घबड़ा गया।

यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि अखाड़ा में उतरते ही कोई पहलवान नहीं बन जाता, विद्यालय में दाखिला लेते ही कोई विद्वान नहीं बन जाता, खेत में बीज बोते ही फसल तैयार नहीं हो जाती, व्यापार शुरू करते ही कोई धन्ना सेठ नहीं बन जाता। कुशल और सफल संगीतज्ञ, गायक, लेखक, प्रवक्ता, डॉक्टर, इंजीनियर, खिलाड़ी, वैज्ञानिक, व्यापारी, राजनेता, वकील आदि बनने के लिए धैर्यपूर्वक वर्षों तक परिश्रम-साधना करने की आवश्यकता होती है। साथ ही विघ्न-बाधाओं, विपत्तियों एवं प्रतिकूलताओं की आंधी आने पर मजबूतीपूर्वक अपने पांव धरती पर जमाये

रखने की आवश्यकता होती है।

दुनिया के इतिहास में एक भी ऐसा सफल एवं पूज्य व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसे प्रतिकूलताओं एवं विषम परिस्थितियों का सामना न करना पड़ा हो, किंतु उसकी विशेषता यह रही है कि वे प्रतिकूलताओं एवं विषम परिस्थितियों के आने पर न तो टूटे और न रुके। सारे घात-प्रतिघात को सहते हुए वे अपने लक्ष्य-उद्देश्य की ओर निरंतर आगे बढ़ते ही रहे। उद्देश्य जितना बड़ा और लक्ष्य जितना ऊंचा होगा उतना ही दृढ़ संकल्प, धैर्य, उत्साह, समर्पण एवं पुरुषार्थ की आवश्यकता होगी।

बांसुरी का सुरीला और मीठा स्वर किसके मन को नहीं मोह लेता। परंतु बांसुरी के इस सुरीले और मीठे स्वर का राज क्या है, इस पर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। इसके लिए बांसुरी को गरम लोह सलाखों से अपने शरीर पर कई छेद करवाने पड़ते हैं।

एक मंदिर की सीढ़ी पर लगे पत्थर ने मंदिर के गर्भ गृह में प्रतिष्ठित मूर्ति से पूछा—भाई! मेरा और तुम्हारा दोनों का जन्म एक ही खदान से हुआ है और हम दोनों को खदान से निकालने का काम एक समान मजदूरों ने किया है, फिर क्या कारण है कि आज मेरी और तुम्हारी सामाजिक प्रतिष्ठा में जमीन-आसमान का अंतर है। लोग मेरे सिर पर तो पैर रखते हुए चलते हैं और तुम्हारे आगे सिर झुकाते हैं, तुम्हारी पूजा करते हैं? मूर्ति ने उत्तर दिया—और कोई कारण तो मैं नहीं जानता, किंतु एक खास कारण यह है कि खदान से निकलने के बाद जब हम दोनों मूर्तिकार के पास पहुंचे तब तुम मूर्तिकार की छेनी-हथौड़ी की चोट सहन न कर टूट गये और मैं मूर्तिकार की छेनी-हथौड़ी की अगणित चोटों सहन करता हुआ अटूट बना रहा। मेरी तरह यदि तुम भी छेनी-हथौड़ी की चोट सहन कर लिये होते तो तुम भी आज किसी मंदिर में प्रतिष्ठित होते।

यह उदाहरण यही बताता है कि जो व्यक्ति प्रतिकूलताओं, विघ्न-बाधाओं, विरोधों की चोट सहन कर अटूट रहता है और धैर्यपूर्वक अपना काम करता जाता है वही अपने उद्देश्य में सफल होता है और समाज में प्रतिष्ठा-प्राप्त करता है। किसी कवि ने कितना सुंदर कहा है—

समर में घाव खाता है उसी का मान होता है,  
छिपा उस वेदना में अमर वरदान होता है।  
सृजन में चोट सहता है छेनी और हथौड़ी का,  
वही पाषाण मंदिर में कहीं भगवान होता है।

सद्गुरु कबीर ने कहा है—हीरा सोई सराहिये, सहै  
घनन की चोट। जो घनों की चोट सहन करके भी नहीं  
टूटता, अटूट रहता है, वही असली-खरा हीरा है और  
किसी के मुकुट में शोभा पाता है। जितनी बड़ी  
उपलब्धि, उतने ज्यादा त्याग-तप, सहन एवं समर्पण की  
आवश्यकता होती है। कोई स्त्री मां तभी बनती है जब  
वह प्रसव-पीड़ा सहन करने को तैयार हो और उसके  
पहले आत्मसमर्पण को। आग में तपने पर ही सोना का  
मैल दूर होता है और उसकी चमक बढ़ती है, उसमें  
निखार आता है। इतना ही नहीं, कंठहार बनकर वह  
किसी के गले की शोभा तभी बढ़ाता है और उसके  
सौंदर्य में वृद्धि करता है जब वह सुनार की छेनी-हथौड़ी  
की चोट सहन करता है। यदि सोना आग में तपने को  
और सुनार की छेनी-हथौड़ी की चोट सहने को तैयार न  
हो तो वह न तो कभी निर्मल-निर्दोष बन पायेगा और न  
आभूषण बनकर किसी की शोभा बढ़ा पायेगा। इसी  
प्रकार जो व्यक्ति विघ्न-बाधाओं एवं प्रतिकूलताओं की  
कसौटी को सहन नहीं कर पाता वह किसी दिशा में  
विशेष योग्यता-सफलता प्राप्त नहीं कर सकता और न  
उसके व्यक्तित्व में चमक-निखार आ पाता है।

हर व्यक्ति को अपना लक्ष्य तो ऊंचा और हौसला  
बुलंद रखना ही चाहिए, इसके बिना तो कुछ भी नहीं  
होगा, परंतु इतने मात्र से भी कुछ नहीं होगा जब तक  
लक्ष्य के अनुरूप समर्पण एवं परिश्रम न हो। कौन  
आदमी कितना धैर्यवान, सहनशील, दृढ़निश्चयी, उत्साही  
एवं लगनशील है, इसकी कसौटी प्रतिकूल परिस्थिति में  
ही तो होती है। प्रतिकूलताएं परीक्षा लेने को ही आती हैं।  
इसमें जो पास होता है, वही सफल हो पाता है। कमजोर  
मन का आदमी तो टूटकर बिखर जाता है। गंगोत्री से  
पत्थर टूटकर पानी की धारा के साथ बहते हैं। जो  
टुकड़ा कमजोर होता है वह टूटते-टूटते बालू-कण के  
रूप में परिवर्तित होकर बिखर जाता है, किन्तु जो टुकड़ा

मजबूत होता है वह धारा के साथ बहते हुए तमाम ठोकड़ों  
खाते हुए घिस-घिस कर सुंदर-सुडौल हो जाता है और  
शालिग्राम बनकर पुजा जाता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं—

नहीं विघ्न बाधाओं को हम स्वयं बुलाने जाते हैं।  
फिर भी यदि वे आ जायें तो कभी नहीं घबड़ाते हैं  
मेरे मत में तो विपदायें हैं सच्ची प्राकृतिक चिकित्सायें।  
उनसे वे ही डरें जिनकी हों कच्ची शिक्षा दिक्षायें

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

भक्ति भाव भादों नदी, सबै चली घहराय।

सरिता सोई सराहिये, जेठ मास ठहराय

सावन-भादों में तो सभी नदियां भरकर चलती हैं,  
किन्तु नदी वह प्रशंसनीय है जिसमें ज्येष्ठ मास में भी  
पानी बहता हो और जो प्यासे की प्यास बुझाती हो। इसी  
प्रकार अनुकूल परिस्थिति, सुख-सम्मान के प्राप्त होते  
रहने पर सब ज्ञानी, विवेकी जान पड़ते हैं, किन्तु ज्ञान,  
विवेक, साहस, उत्साह की परीक्षा अनुकूल परिस्थिति,  
सुख-सम्मान प्राप्त होते रहने पर नहीं होती, अपितु  
प्रतिकूल परिस्थिति, विघ्न-बाधाएं, अपमान मिलने पर  
होती है। प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति आने पर,  
भयंकर अपमान आदि मिलने पर जो रंचमात्र विचलित  
हुए बिना अपने कर्तव्य-सेवा-साधना पथ पर आगे बढ़ते  
रहते हैं वे ही अपने लक्ष्य-प्राप्ति में सफल हो पाते हैं  
और समाज को कुछ दे पाते हैं।

जिस प्रकार दिन और रात, सुबह और शाम, धूप  
और छांव एक के बाद एक आते-जाते रहते हैं उसी  
प्रकार जीवन-यात्रा में भी सुख और दुख, मिलन-  
वियोग, सम्मान-अपमान, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि  
एक के बाद एक आते-जाते रहते हैं। विशेषता यही है  
कि सभी स्थितियों में मन को समता भाव में बनाये  
रखकर अपने लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में निरंतर आगे बढ़ते  
रहा जाये। सभी स्थितियों में समता बनाये रखने को  
गीता में योग कहा गया है—समत्वं हि योग उच्यते।

ध्यान दें, परिस्थितियों को अपने अनुसार बदलने में  
आज तक कोई सफल नहीं हुआ है और न हो सकता है,  
किन्तु जब जैसी परिस्थिति आये उसको स्वीकार कर

अपना काम करते रहने में कोई भी सफल हो सकता है। यदि आप अपने जीवन में चमक लाना चाहते हैं, व्यक्तित्व एवं योग्यता में निखार लाना चाहते हैं और अपने उद्देश्य में सफल होना चाहते हैं तो आपको निंदा और प्रशंसा दोनों से ऊपर उठकर अपना काम करते रहना होगा। निश्चित ही प्रशंसा सुनकर उत्साह बढ़ता है, किंतु सावधान न रहने पर प्रशंसा सुनकर अहंकार आने लगता है और अहंकार आगे का रास्ता रोक देता है, उस पर पूर्ण विराम लगा देता है। निंदा सुनकर घबड़ाने और चिढ़ने की नहीं, किंतु उसको चुनौती के रूप में स्वीकार कर और अधिक अच्छा काम करने की आवश्यकता है। दुनिया के सभी सफल व्यक्तियों ने यही किया है और यही सफलता का रहस्य है।

दुनिया में तीन तरह के मनुष्य होते हैं—एक पर्वत की तरह, दूसरा पेड़ की तरह, तीसरा तृण की तरह। कैसी भी प्रचण्ड आंधी क्यों न चले पर्वत न तो जरा भी हिलता है और न अपनी जगह से सूत बराबर हटता है। पेड़ आंधी आने पर हिलता तो है किंतु हटता नहीं है, आंधी दूर होने पर पेड़ अपनी जगह पर अडिग-स्थिर खड़ा रह जाता है, किंतु तृण आंधी तो दूर जरा-सी हवा चलने पर हिलने लगता है और थोड़ी तेज हवा चलने पर उड़कर कहां से कहां जाकर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार दुनिया में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो थोड़ी-सी प्रतिकूलता-विपत्ति आने पर, भय और प्रलोभन के अवसर आने पर अपने पथ से विचलित हो जाते हैं, और कर्तव्य-कर्म छोड़कर गलत रास्ते में जाकर अपना पतन कर लेते हैं। कुछ लोग प्रतिकूलता-विपत्ति आने पर कुछ देर के लिए विचलित तो हो जाते हैं, परंतु अपने कर्तव्य कर्म में लगे रहते हैं और पुनः सम्हल जाते हैं, भटकते नहीं हैं, सेवा-साधना का काम छोड़ते नहीं हैं। किंतु कुछ लोग ऐसे होते हैं जो भयंकर से भयंकर प्रतिकूलता-विपत्ति आने पर, बड़ा से बड़ा भय और प्रलोभन आने पर न हिलते हैं और न हटते हैं, वे पर्वत के समान एकरस स्थिर, अडोल, अकंप, अचल बने रहते हैं। ऐसे लोग ही अपने उद्देश्य में सफल होते हैं और दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत भी।

प्रतिकूलता और त्याग से घबड़ाने वाला मनुष्य कीट-पतंग के समान जीकर दुनिया से बिदा हो जाते हैं।

उनके जीवन का कोई मूल्य और महत्त्व नहीं होता। मूल्य और महत्त्व उसी के जीवन का होता है जो प्रतिकूलता से जरा भी घबड़ाता नहीं, किंतु उसे चुनौती के रूप में स्वीकार करता है और प्रतिकूलता आने पर और अधिक उत्साहपूर्वक अपने उद्देश्य के लिए समर्पित हो जाता है, जो दैहिक सुख-सुविधा और आरामतलबी का त्यागी होता है और जो अपने स्वार्थ एवं अहं का, मोह-ममता का बलिदान करने को तैयार रहता है। यह पहले ही कहा गया है कि उद्देश्य जितना बड़ा होता है उतना ज्यादा त्याग और बलिदान की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में निम्न उदाहरण अत्यंत प्रासंगिक है—

एक जगह कथा-सत्संग में श्रीकृष्ण के जीवन-प्रसंगों पर चर्चा करने के पश्चात् कथाकार-संत ने वहां उपस्थित महिलाओं को संबोधित कर कहा कि आप लोगों में जो-जो महिलाएं श्रीकृष्ण-जैसा पुत्र चाहती हैं वे हाथ उठाएँ। कौन ऐसी नारी है जो श्रीकृष्ण-जैसा पुत्र न चाहती हो। सभी महिलाओं ने हाथ उठा दिये। तब कथाकार संत ने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—अब आप लोगों में से जो-जो महिला अपने पति के साथ आठ-दस साल जेल में बंद रहना चाहती हों, वे हाथ उठाएँ। अबकी बार किसी महिला ने हाथ नहीं उठाया।

सब जानते हैं कि श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा में कंस के जेलखाना में हुआ था और श्रीकृष्ण को जन्म देने वाली देवकी को अपने पति वसुदेव के साथ कई वर्ष तक जेल में बंद रहना पड़ा था तथा श्रीकृष्ण को जन्म देने के पूर्व अपने सात पुत्रों का बलिदान देना पड़ा था। श्रीकृष्ण का जन्म बहुत कष्ट सहन, त्याग और बलिदान देने के बाद हुआ था।

इस उदाहरण का सार यही है कि कोई बड़ी और महत्तम उपलब्धि प्राप्त करने के लिए बड़े त्याग, तप और बलिदान की आवश्यकता होती है। कष्ट, प्रतिकूलता से घबड़ा जाने वाला कुछ नहीं कर सकता। यदि आपके मन में सचमुच में कुछ करने, पाने और बनने की इच्छा है तो उसके लिए अटूट निष्ठा, समर्पण, उत्साह और धैर्यपूर्वक जुट जाइये। कोई विघ्न-बाधा और दुनिया की ताकत आपका रास्ता नहीं रोक पायेगी। सफलता आपके कदम चुमेगी।

—धर्मेन्द्र दास

## कबीर वाणी की कसौटी पर धर्मशास्त्र

लेखक—श्री धर्मदास

जिस युग में हम हैं उसमें अनेक धर्मदर्शन हैं। उन्हें प्रतिपादित करने एवं व्याख्यायित करने के उद्देश्य से असंख्य धर्मशास्त्रों की रचना विश्व के कोने-कोने में हुई है। असंख्य धार्मिक विचार लुप्त हो गये तथा बहुत-से प्रचार-प्रसार के अभाव में अनजान हैं। विचारों की प्राचीनता समृद्ध संस्कृति का परिचायक है। भारतवर्ष इस दृष्टि से संसार में अग्रणी है। भारतीय संस्कृति विभिन्न जातीय इकाइयों के अविरल मिलन का प्रतिफल है। अनगिन कबीलों ने, सभ्य भी बर्बर भी, भारतीय सीमा में प्रवेश किया और यहां के समाज में विलीन हो गये। उन सबके धर्म-विचार एवं कर्मकांड मिलते गये और वे सभी हमारी संस्कृति के अंग बन गये। हमें इस सांस्कृतिक धरोहर पर गर्व है। परन्तु विवेक का यह भी तकाजा है कि हम समझें और इस सत्य को—चाहे वह कितना भी कड़वा क्यों न हो—स्वीकार करें कि जो एक समय के लिए उपयोगी भले ही रहा हो, यदि आज के लिए अनुपयुक्त एवं हानिकारक है तो उसे हमें त्यागना होगा। ऐसी अनुपयोगी धारणाएं वास्तव में सांस्कृतिक धरोहर नहीं, प्रत्युत पवित्र गंगा जल के साथ बहने वाला कूड़ा और करकट है। महाभारत को हम अपना पांचवां वेद कहते हैं किन्तु उसमें वर्णित पांच पांडवों की एक ही पत्नी द्रौपदी की कल्पना का पक्षधर कौन परम्परावादी व्यक्ति अनुसरण करना चाहेगा? और फिर उसी पत्नी को जुवे के दावें पर लगा देना—इसे भी जो 'भारतीय संस्कृति' के नाम पर उत्कृष्ट कार्य बतायेंगे, वे वास्तव में संस्कृति के द्रोही हैं। यदि जीवविज्ञान के आधार पर यह आपत्ति उठाई जाये कि सात दिनों में नहीं, बल्कि अनेक युगों के फलस्वरूप ही जगत के प्राणियों का विकास हुआ है, तो इस आपत्ति का बाइबिल की दुहाई देकर समाधान नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार कोई पूछे, 'यीशु मसीह तीन दिन तक कब्र में दफन रहने के उपरान्त फिर जी उठे, इसका क्या प्रमाण है?' तो हम उत्तर देंगे कि पवित्र बाइबिल में लिखा है। क्या इस

प्रमाण को युक्तिसंगत ठहराया जा सकता है? वह अल्लाह ही है जिसने आसमानों को बिना सहारे ऊंचा किया, सूरज और चांद को काम पर लगाया, वही इस काम का इन्तजाम चला रहा है। ( 'सूरह' अर-रअद, )'—इस उत्तर से क्या अंतरिक्ष-विज्ञान का छात्र अपनी विश्वविद्यालय की डिग्री हासिल कर सकेगा? क्योंकि ये पवित्र कुरान की आयतों पर आधारित हैं जो सत्य हैं ( : )।

हमारे निबंधों की प्रतिक्रिया में कहा जाता है कि निबंध केवल आलोचनात्मक ही होते हैं। ऐसी प्रतिक्रियाएं सच को स्वीकार करने से जी चुराने की बात है।

हमारे निबंधों का प्रेरणास्रोत संत कबीर-वाणी है। कबीर आधुनिक काल ( 15 वीं शती ) में प्रतिभा के ऐसे धनी महापुरुष हैं जिनका स्वतंत्र चिंतन था। आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व के महात्मा बुद्ध एवं महावीर स्वामी ऐतिहासिक स्वतंत्र चिंतक हुए हैं। भारतवर्ष में इस श्रृंखला में कपिल, कणाद एवं जैमिनी प्रागैतिहासिक स्वतंत्र चिंतन के महापुरुष हुए हैं जिनके काल का निर्णय करना अति कठिन है। इन मनीषियों की वाणियों से हमें ज्ञात होता है कि इन्होंने किसी धर्मग्रन्थ को नित्य, स्वयंभू एवं अपौरुषेय और अमोघ नहीं कहा; परम्परा के विपरीत जाकर ईश्वर, अवतार, वर्ण एवं आश्रम आदि को प्रश्रय नहीं दिया। मानवता के हित में मिथ्या धारणाओं एवं दैवीय व्यवस्था की भर्त्सना करने से भी परहेज नहीं किया। भारतीय संस्कृति के नाम पर परंपराओं की आड़ में फैलायी जाने वाली भ्रांत, संकुचित तथा सम्प्रदायवाद से दूषित अनेक मान्यताओं का प्रबल खंडन बुद्ध के बाद किसी ने किया है तो वह मध्ययुग में आकर संत कबीर एकलौते मनीषी संत हैं। एच. के. व्यास लिखते हैं— "भारतीय संस्कृति की परंपराएं महान हैं। परन्तु कई ऐसी बातें हैं जो एक समय और काल विशेष के लिए तो उपयोगी थीं, किन्तु आज बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों में उन्हें वैसे ही लागू करने का यत्न प्रगति

के लिए बेड़ियां बनकर रह जायेगा। वर्ण-व्यवस्था एक समय शायद स्वाभाविक थी, इतिहास के उस काल में उसका उपयोग भी था। परन्तु आज समाज के एक प्रबल तथा मेहनत करने वाले अंग को 'शूद्र' कहकर उसे दबाये रखने का प्रयत्न घोर अन्याय होगा; उस काल के गुणों की रट लगाते-लगाते भारतीय संस्कृति के नाम पर उन्हें हीन कहना, उन्हें बस्तियों से बाहर रखने की बात की पुष्टि करना किसी को शंकराचार्य पद पर सुशोभित करने में भले ही सहायक हों, परन्तु भारतीय समाज के लिए, भारतीय संस्कृति की मानववादी परंपराओं के लिए, यह अक्षम्य अपराध होगा।" "भारतीय संस्कृति के नाम पर दलित किन्तु होनहार बालकों की प्रतिभा को एकलव्य के अंगूठे की तरह कटवा डालने की मान्यता को प्रस्तावित करने का आज कोई भी प्रयत्न भारतीय संस्कृति के साथ घोर अन्याय होगा, उसका घोर अपमान होगा। यह हमारी शानदार सांस्कृतिक परंपरा पर एक क्रूर कुठाराघात होगा।"

भारतीय धर्मदर्शन की महान विशेषता यह रही है कि दार्शनिक मतभेद को प्रश्रय—प्रेम एवं आदर का भाव—सदैव मिलता रहा है। जिन दिनों वैदिक यज्ञों की परंपरा चरम शिखर पर थी; ज्योतिष्टोम, राजसूय के साथ अश्वमेध यज्ञ में पशुबलि दी जाती थी; उन दिनों ऋषि बृहस्पति ने वैदिक धारणाओं पर भर्त्सना ही नहीं की बल्कि वेदों के रचनाकारों को भांड, धूर्त और निशाचर तक कह डाला। सर्वदर्शन संग्रह के कुछ श्लोक अवलोकनीय हैं—

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।

नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः

"न स्वर्ग है न अपवर्ग और न तो पारलौकिक आत्मा है। वर्णाश्रम की क्रियाएं भी कोई फलदायक नहीं हैं।"

पशुश्चेन्निहितः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।

स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते

- . प्रस्तावना, भारतीय संस्कृति के स्रोत (भगवतशरण उपध्याय) पृष्ठ ग एवं घ।
- . वही, पृष्ठ च।

"यदि ज्योतिष्टोम-यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग में जाता है, तो यज्ञ करने वाला व्यक्ति पशु की जगह अपने पिता को मारकर क्यों नहीं उसे स्वर्ग पहुंचा देता।"

त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ।

'तीनों वेदों—ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के कर्ता भाण्ड, धूर्त और निशाचर हैं।'

मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्

यज्ञ में मारे हुए पशु का मांस खाना निशाचरसम रीति है।

"कौटिल्य ने बृहस्पति को एक प्राचीन अर्थशास्त्र-कार माना है। बृहस्पति द्वारा उच्चरित श्लोकों एवं गाथाओं को महाभारत ने कई बार कहा है। यशस्तिलक में ऐसा आया है कि बृहस्पति की नीति में देवों को कोई स्थान नहीं मिला। याज्ञवल्क्य ने बृहस्पति को धर्मवक्ता कहा है।" विरोधियों के लिए यह आदर-भाव अनुकरणीय है।

उपर्युक्त श्लोकों में बृहस्पति ऋषि ने जिन बातों की आलोचना की है वे हैं हिंसा, पशुबलि, वर्णाश्रम, स्वर्ग-नरक-परलोक आदि।

इन्हीं विषयों पर संत कबीर के विचार द्रष्टव्य हैं—

अहिंसा—संतो पांडे निपुण कसाई।

बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई।

(बी.शब्द / -

पंडितों की हिंसा प्रवृत्ति की निंदा है तो मुसलमानों को भी नहीं बख्शा—

बरबस आनि के गाय पछारी, गरा काटि जिव आपु लिया

जीयत जीव मुर्दा करि डारे, ताको कहत हलाल हुआ।

(बी.श. / - )

संत कबीर मांसाहार के घोर निंदक थे। उन्होंने कहा—'जस मांस पशु की तस मास नर की, रुधिर रुधिर एक सारा जी (बी.श. / );' 'रजो-वीर्य से मांस उपानी, सो मांस नपाकी तुम खाई (श. / )' तथा 'एक मरि मुये अन्न न खाई, एक मरे सिद्धै रसोई (बी.श. / )'।

- . धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ. पांडुरंग वामन काणे, प्रथम भाग, पृष्ठ ।

**वर्णाश्रम**—संत कबीर ने जीव-विज्ञान की बुनियादी तथ्यों के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में भेद का खंडन किया—

एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।  
एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा  
(बी.श. )

गुप्त प्रकट है एकै दूधा। काको कहिये ब्राह्मण शूद्रा  
(बी.रमैनी )

प्रतिक्रियावादी लोगों द्वारा कहा जाता है कि वर्णव्यवस्था प्राकृतिक है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त ( / / ) के मत में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र क्रम से विराट पुरुष के मुख, बाहुओं, जांघों एवं पैरों से उत्पन्न हुए। तैत्तिरीय संहिता का मत है कि—शूद्रो मनुष्याणामश्वः पशूनां तस्मात् भूतसंक्रामिणावश्वश्च शूद्रस्य तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लुप्तः ( / / / ) जैसे पशुओं में घोड़ा होता है, वैसे मनुष्यों में शूद्र है, अतः शूद्र यज्ञ के योग्य नहीं है।

संत कबीर ने सीधा-सा प्रश्न किया—

जो तू करता वर्ण बिचारा, जन्मत तीन दण्ड अनुसार।  
जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी को जाया, और राह दे काहे न आया।  
जो तू तुरुक तुरुकनि को जाया, पेटहि काहे न सुन्नति कराया।  
(बी.रमैनी )

यदि उच्च कुल द्विज या तुरुक में पैदा होना ईश्वरी या अल्लाह का विधान है तो द्विजों को त्रिदण्ड धारण करके एवं योनि मार्ग छोड़कर किसी अन्य मार्ग से धरती पर आना चाहिए था; तुरुकनि के गर्भ में जब बालक था तो बनाने वाला सुन्नत भी गर्भावस्था में कर देता, तब श्रेष्ठता मानने योग्य होती। घुमा-फिराकर बात काटने की कोशिश की जा सकती है किन्तु आज का कोई भी युवक श्रेष्ठता का प्राचीन प्रमाण नहीं मानता। महाभारत के प्रणयन काल तक विचारों में परिवर्तन के लक्षण मिलते हैं। वनपर्व ( , - ) का श्लोक कबीर की भाषा एवं दृष्टिकोण है—‘जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते। संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः’—(हे महासर्प,

. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बालक क्रमशः पलाश, गूलर तथा बेल का डण्डा हाथ में लेकर उत्पन्न होते।

महामते) संसार में मनुष्यता ही एक जाति है। समिश्रण होने से उनकी परीक्षा नहीं हो सकती, यह मेरा विचार है।

‘सर्वेसर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः वाङ्-मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम्’—क्योंकि सदा से सभी वर्णों की स्त्रियों से सभी वर्णों के पुरुषों ने बच्चे पैदा किये। वाणी, मैथुन और जन्म-मरण सब में एक समान हैं। इन श्लोकों के रचनाकार, जो भी थे, प्राचीनकाल में भी शास्त्रोक्त तर्कहीन व्यवस्था की आलोचना कर पाते थे। यह दर्शाता है कि तत्कालीन समाज विरोधियों के मतों का आदर करता था।

**स्वर्ग-नरक-परलोक**—कहा जाता है कि संत कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन स्वर्ग-लोक की कल्पना, जो हिन्दू, इस्लाम एवं ईसाई धर्मग्रन्थों में की गयी है, उस पर मौलिक प्रश्न उठाते हैं—

साम्प्रदायिक धर्मशास्त्रों में आसमान में एक लोक (स्वर्ग) की बात बतलायी गयी है जहां पहुंच जानेवालों की उम्र पचास लाख वर्षों की हो जाती है। वेद-शास्त्रों को पढ़कर (पंडित) ऐसा वर्णन करते हैं जैसे स्वयं स्वर्ग अपनी आंखों से देखकर लौटे हैं। शास्त्रों की झूठी बातें लोगों के मन में पैठ गयीं जिससे जनमानस भ्रमित है। तुम स्वर्ग रूपी काल्पनिक पक्षी को खोजने के फेर में पड़े हो। जिनके बारे में पण्डितों ने पीछे अगम-अपार वेद-शास्त्रों की रचना किये हैं। किन्तु स्वर्ग से परिचय के बिना तुम कैसे जान पाओगे कि तुम्हारा स्वर्ग का अहंकार झूठा है या इसमें सच्चाई है।

“ऋग्वेद ( / / - ) में ऋषि ने सोम से प्रार्थना की है कि वह उन्हें उस अमर लोक में रख दे जहां निरन्तर प्रकाश रहता है, जहां सभी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है, जहां पर विभिन्न कोटि के आनन्द की उपलब्धि होती है। अथर्ववेद ( / / एवं - ) में

. कृतिया सूत्र लोक एक अहई, लाख पचास की आयु कहई विद्या वेद पढ़े पुनि सोई, बचन कहत परतक्षे होई पैठी बात विद्या की पेटा, वाहुक भरम भया संकेता साखी—खग खोजन को तुम परे, पाछे अगम अपार।  
बिन परचै कस जानि हो, कबीर झूठा है हंकार



आया है कि स्वर्ग में बहुत-सी नारियां हैं, खाने के लिए बहुत-से पौधे, विभिन्न प्रकार के पुष्प हैं, वहां घृत, दूध, मधु, सुरा, दही की नदियां हैं। शतपथ ब्राह्मण ( / / / - ) में आया है कि स्वर्ग का आनन्द, पृथ्वी के आनन्द का सौ गुना होता है। यहां तक कि छांदोग्य उपनिषद् ( / / ) ने ब्रह्मा के लोक में दो झीलों, सोम की बौछार करते हुए अश्वत्थ वृक्ष एवं अपराजिता नामक ब्रह्मा की नगरी का उल्लेख किया है; कौशीतकि उपनिषद् ( / एवं ) ने लिखा है कि जो लोग स्वर्ग में पहुंचते हैं उनके स्वागत में पांच सौ अप्सराएं आती हैं, जिनके एक सौ के हाथों में जयमाल, एक सौ के पास अंजन, एक सौ के पास सुगन्धियां, एक सौ के पास वस्त्र तथा एक सौ के पास फल रहते हैं। पुराणों—ब्रह्म ( / ), पद्म ( / / - ), मार्कण्डेय ( / - ) में नन्दन वन, अप्सराओं के समूहों से युक्त विमानों, सोने के आसनों, बिस्तरों, चिंताभावों, सभी सुखों आदि का विशद उल्लेख किया है।”

उपर्युक्त शास्त्रों तथा उनमें वर्णित स्वर्ग एवं परलोक के परिपेक्ष्य में कबीर-वाणी साधारण जनता का भ्रम मिटाने का प्रयास करती है। कबीर के समय भारत में इस्लामी सल्तनत थी। इस्लाम में बिहिश्त (स्वर्ग) में हूरें (स्वर्ग में रहने वाली सुन्दर स्त्री) तथा शराब की नदियों का सुख मिलता है। डॉ. पां. वा. काणे लिखते हैं : “शबर एवं कुमारिल का कथन है कि स्वर्ग विषयक प्रचलित धारणा अप्रमाणित है, महाभारत एवं पुराण मनुष्यकृत हैं, अतः उनकी बातें अविचारणीय हैं तथा स्वर्ग सम्बन्धी वैदिक निरूपण केवल प्रशंसा के लिए अर्थवाद हैं।” स्वर्ग संबंधी धारणा को कबीर झूठा अहंकार बतलाते हैं वही पूर्व मीमांसा सूत्र के व्याख्याकार स्वर्ग को अप्रमाणित तो मानते हैं किन्तु, ‘केवल प्रशंसा के लिए अर्थवाद’ बतलाकर भरमाने का प्रयास करते हैं। जो अप्रमाणित है उसे बार-बार शास्त्रों में लिखे जाने का तात्पर्य झूठ का प्रचार है। उसे कबीरी भाषा में ‘झूठे का अहंकार’ पालना कहा जाता है।

. धर्मशास्त्र का इतिहास डा.पा.वा. काणे, पंचम भाग, पृ. ।  
. वही, पृ.

बुद्ध एवं महावीर से पूर्व ही मुख्य धर्मशास्त्रों- धर्मसूत्रों, संहिताओं, उपनिषदों एवं स्मृतियों का प्रणयन (ई.पू. के पूर्व) हो चुका था और उनका संकलन लगभग या ई. तक होता रहा अर्थात् उनका प्रणयन काल लगभग वर्षों का है। वर्षों की इस लम्बी अवधि में भारतीय जनता की धार्मिक एवं सामाजिक भावनाओं, उनके आचारों एवं व्यवहारों में बहुत-से परिवर्तनों के अवसर उपस्थित हुए। बौद्धधर्म उठा, बढ़ा और अनेक मतों में विभाजित हुआ। प्राचीन बौद्ध धर्म में पर्याप्त परिवर्तन हो गये थे और आदर्शों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे थे। बुद्ध अनीश्वरवादी थे किन्तु उनके धर्म में बहुत-से ऐसे सम्प्रदाय उठ खड़े हुए जो पूर्ण ईश्वरवादी थे। लोग उन्हें भगवान मानने लगे तथा स्वयं बुद्ध की पूजा की जाने लगी। वज्रयानी तान्त्रिक सम्प्रदायों के विचित्र सिद्धान्तों एवं दुष्प्रयोगों के चंगुल में बौद्ध धर्म फंस गया। धीरे-धीरे भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के मठ प्रमादों, विषयों एवं अनैतिक आचरणों के केन्द्र बन गये। डॉ. ए. एस. अल्तेकर ने निष्कर्ष निकाला है कि भिक्षुओं की एक लम्बी संख्या ऐसी होती थी जिससे कुख्याति मिलती थी। कथावत्थु से ज्ञात होता है कि अन्धक शाखा किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए मैथुन की अनुमति देती थी, दक्षिण में आकर मन्त्रों के प्रयोग, मानस आचरणों एवं इन्द्रियों के आनन्द के लिए कुछ विशिष्ट क्रियाओं के समावेश से वज्रयान पूर्ण हो गया।” वैदिक कृत्य, पूजे जाने वाले देवगण, तथा उनके कर्मकांडों में महान परिवर्तन हो गये। इस्लामी आक्रमण के फलस्वरूप इस्लामीकरण हुआ। पुराने सामाजिक ढांचे में तोड़-फोड़ हुई। पशुयज्ञ, जो कभी-कभी किये जाते थे, अब उतने फलदायक नहीं माने जाते। जाति-प्रथा, भोज्य-अभोज्य, विवाह एवं सामाजिक व्यवहार, विशेषकर छुआछूत एवं साम्प्रदायिक भेदभाव, कठोर एवं दृढ़तर होते गये। बदले परिवेश में वीं एवं आगे के सदियों के ब्राह्मणवादी धर्मप्रणेताओं के सुर भी बदलने लगे। अपना अस्तित्व बचाने के उद्देश्य से बुद्ध को विष्णु का अवतार घोषित कर दिया; शाक्तों, नाथ-

. वही, चतुर्थ भाग, पृ. ।

सिद्धों, तांत्रिकों, कौलाचारों एवं वामाचारों के कुछ कृत्यों, आचारों एवं व्यवहारों को आत्मसात करके नया अवतार में हिन्दू बना।

अनेकों वैदिक आचरण—जो वेदों द्वारा व्यवस्थित एवं आज्ञापित थे, अब वर्जित घोषित हुए। इसे कलिवर्ज्य कहा गया अर्थात् कलियुग में वर्जित कृत्य। इनकी संख्या लगभग हैं। डॉ. पां. वा. काणे कृत धर्मशास्त्र का इतिहास (पंचम भाग) में उल्लेख किया गया है कि नियोग, ज्योतिष्टोम में अवभृथ के उपरान्त अनुबन्ध्या गौ की आहुति एवं ज्येष्ठ पुत्र को पैतृक संपत्ति का अधिकांश देने पर निषेध है। वैदिक युग में कतिपय अवसरों पर गाय एवं बैल की हत्या होती थी किन्तु गाय की बलि की लोग अति भर्त्सना करने लगे; दूल्हे, अतिथि एवं पितरों के सम्मान में वैदिक मंत्रों के साथ पशु-बलि का विधान है, मनु ने मधुपर्क, यज्ञों एवं पितरों के पिण्डदान या श्राद्ध के कृत्यों तथा देवों के लिए यज्ञों में पशुओं की बलि की अनुमति दी है और इस बात पर बल देकर घोषणा की गयी है कि वेद की व्यवस्था के अनुसार पशु-बलि हिंसा नहीं है, प्रत्युत वह अहिंसा है। याज्ञवल्क्य ने पितरों की संतुष्टि के लिए भांति-भांति की मछलियों एवं कतिपय पशुओं के मांस की आहुतियों की व्यवस्था की है। मिताक्षरा को कहना पड़ा कि यद्यपि श्राद्ध में मांस एवं मधु की आहुतियां सभी वर्णों के लिए व्यवस्थित की गयी हैं तथापि ब्राह्मणों द्वारा मुनि के योग्य भोजन, क्षत्रियों एवं वैश्यों द्वारा मांस तथा शूद्रों द्वारा मधु का पालन होना चाहिए। डॉ. काणे द्वारा प्रश्न उठाया गया है कि यदि वेद नित्य है, स्वयंभू है और परमोच्च प्रमाण वाला है तो ऋषियों को कलियुग के प्रारम्भ में किस प्रकार अधिकार हो गया कि उन्होंने वेदविहित अथवा वेद द्वारा व्यवस्थित कृत्यों को वर्जित कर दिया। उचित तो यह था, और इसी में ईमानदारी थी, कि धर्मशास्त्रकार निर्भीक होकर यह कहते कि परिवर्तित दशाओं एवं परिवेश के कारण वेद एवं प्राचीन स्मृतियों की बातों एवं शब्दों को अब वह मान्यता नहीं मिलनी

- . वही, पंचम भाग, पृ.  
. वही, पृ. - ।

चाहिए और उनका अनुसरण नहीं करना चाहिए। क्योंकि स्वयं मनु. ( / ) एवं याज्ञवल्क्य ( / ) ने व्यवस्था दी है कि व्यक्ति को वह नहीं करना चाहिए या उसका परित्याग कर देना चाहिए जो पहले धर्म होने के कारण करणीय था किन्तु अब लोगों के लिए घृणास्पद हो गया है, दुःखदायक है तथा स्वर्ग की प्राप्ति की ओर नहीं ले जाता। किन्तु उन्होंने पाद टिप्पणी में लिखा है कि मध्यकालीन लेखक इस व्यवहार का समर्थन नहीं कर सके; विश्वरूप का कथन है कि बैल या बकरी तभी काटी जाती है जबकि अतिथि इस प्रकार की इच्छा प्रकट करता है।'

इससे प्रकट होता है कि जिन व्यवहारों को वेदज्ञों ने कलियुग में वर्जित घोषित किया था उन्हें पंडितों ने पूर्णतः स्वीकार नहीं किया। मध्ययुग में धर्मशास्त्रकारों में भले ईमानदारी एवं निर्भीकता का अभाव रहा हो लेकिन संत कबीर ने इन सबसे ऊपर उठकर परित्याग करने वाले कृत्यों के पक्ष में निर्भीक होकर सामाजिक सुधार की बातों को बढ़ाया जिसे विद्वानों ने संतमत का नाम दिया। वैदिक एवं इस्लामिक पद्धति दोनों को सच का आइना दिखलाते हुए कहा—

‘पेट न काहू वेद पढ़ाया, सुन्नति कराय तुरुक नहिं आया’ (रमैनी ) माता के पेट से कोई वेद पढ़कर नहीं आता है। वेद जानने वालों को जन्म से श्रेष्ठ होने का प्रमाण-पत्र नहीं मिल जाता अथवा तुरुक भी सुन्नत करा के पैदा नहीं हुआ कि उसे जन्मजात मुसलमान कहा जाये। पेट से कोई रेडीमेड पंडित या मुल्ला; ब्राह्मण या भंगी बनकर जन्म नहीं लेता। चोटी, यज्ञोपवीत, तिलक, सुन्नत आदि जातीय संस्कार पैदा होने के बाद का पाखण्ड है। अतएव वर्ण एवं जाति भेद, उच्च-नीच का अहंकार; हिन्दू-मुसलमान का बंटवारा आदि विचार कृत्रिम हैं एवं शोषण का एक जरिया है। अब इनका त्याग जरूरी है। इस सच को मानो कि माता के पेट में हम और तुम खून में लथपथ एक जैसे थे और एक-सा प्राण जो तुझ में था वही मुझ में भी था—‘तहिया हम तुम एकै लोहू, एकै प्राण बियापै मोहू’।

—क्रमशः

- . वही, पृ. ।

# बीजक चिंतन

एक मानव-जाति, एक मानवता-धर्म  
तथा आत्माराम का बोध बाह्याचार में  
ढक गये हैं

शब्द-

काजी तुम कौन कितेब बखानी

झंखत बकत रहहु निशि बासर, मति एकौ नहिं जानी  
शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो, मैं न बदोंगा भाई  
जो खुदाय तेरी सुन्नति करतु है, आपुहि कटि क्यों न आई  
सुन्नति कराय तुरुक जो होना, औरत को क्या कहिये  
अर्ध शरीरी नारि बखानी, ताते हिन्दू रहिये  
पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना, मेहरी क्या पहिराया  
वो जन्म की शूद्रिन परसे, तुम पाँड़े क्यों खाया  
हिन्दू तुरुक कहाँ ते आया, किन्ह यह राह चलाया  
दिल में खोजि देखु खोजादे, बिहिस्त कहाँ ते आया  
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, जोर करतु हैं भाई  
कबिरन ओट राम की पकरी, अन्त चले पछिताई

शब्दार्थ—कितेब = किताब, धर्मग्रन्थ। बखानी =  
व्याख्या, वर्णन, बड़ाई। झंखत = झींखना, दुखी होना,  
दिमाग पचाना। बकत = बकना, बकवास करना। मति  
= समझ, अभिप्राय, मतलब। शक्ति अनुमाने = ईश्वरीय  
शक्ति का अनुमान करके। सुन्नति = सुन्नत, खतना।  
बदोंगा = मानना। बिहिस्त = बिहिस्त, स्वर्ग। जोर =  
बल-प्रयोग, जबरदस्ती। कबिरन = भटके हुए लोग।  
ओट = सहारा। राम = ईश्वर।

भावार्थ—काजी साहब! तुम किस किताब की  
व्याख्या एवं बड़ाई करते रहते हो? तुम किताबों  
में रात-दिन दिमाग पचाते तथा बकवास करते हो; परन्तु  
एक भी असली मतलब नहीं समझते हो तुम  
ईश्वरीय शक्ति का अनुमान कर तथा उसकी दुहाई देकर  
बच्चों का खतना करते हो और उनकी पेशाब इन्द्रिय के  
आगे की खाल बेदर्री से काट देते हो। परन्तु हे भाई! मैं  
इस काम को अच्छा नहीं मान सकता यदि  
सचमुच खुदा तुम्हारी सुन्नत करना चाहता है तो उनकी  
खाल गर्भवास से ही कटकर बच्चे को पैदा होना चाहिए

था यदि खतना कराकर ही मुसलमान हुआ जाता  
है तो अपनी बीवी को क्या कहोगे? उसका खतना  
तो हो नहीं सकता। पत्नी को पुरुष का आधा शरीर माना  
जाता है। इस तथ्य को देखते हुए तुम आधा हिन्दू ही बने  
रह गये। अथवा पत्नी जीवनपर्यन्त हिन्दू रहती ही है तब  
खतना न कराकर तुम भी हिन्दू ही बने रह जाते  
इसी प्रकार हे ब्राह्मण कहलाने वालो! यदि जनेऊ  
पहनकर ही ब्राह्मण हुआ जाता है तो तुमने अपनी श्रीमती  
को क्या पहनाया है? उसे तो तुमने वेद, गायत्री तथा  
जनेऊ—सबसे वंचित रखा है जनेऊ—संस्कार से  
रहित होने से वह तो जन्म से ही शूद्रा बनी हुई है, फिर  
हे पंडित, उसका परोसा भोजन तुम क्यों खाते  
हो? सभी मनुष्य तो एक समान हैं, ये हिन्दू-  
मुसलमान आदि रूपी विभाजक रेखाएं कहां से पैदा हो  
गयीं? ये गलत रास्ते किसने चला दिये? हे खोजी  
इनसान! अपने दिल में खोजकर देख, ईश्वर तो तेरे दिल  
में बसा है, सातवें आसमान में कहां से स्वर्ग आ गया,  
जहां तू ईश्वर की कल्पना करता है? कबीर  
साहेब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो, हे भाई! ये हिन्दू और  
मुसलमान नामधारियों के अगुआ अपनी-अपनी मजहबी  
भावनाओं को लोगों पर जबरदस्ती लादते हैं। ये जड़मति  
लोग अपनी सांप्रदायिक बातें सिद्ध करने के लिए ईश्वर  
का सहारा लेते हैं, परन्तु इसके फल में इन्हें पछतावा ही  
हाथ लगेगा -

व्याख्या—इसलाम मजहब के कानून-कायदे का  
निर्णय देने वाला काजी कहलाता है। कबीर साहेब काजी  
से प्रश्न करते हैं कि तुम अपनी किताबों की बड़ी बड़ाई  
करते हो। तुम कहते हो कि हमारी किताब और हमारे  
सारे कानून खुदाई हैं। जब तक संसार का प्रलय नहीं हो  
जाता तब तक इसलाम के ही कानून संसार में चलेंगे।  
तुम्हारी बातें बड़ी लम्बी-लम्बी रहती हैं, परन्तु तुम  
इतनी-सी बात नहीं समझ सकते हो कि यदि ईश्वर को  
यह पसंद होता कि पुरुष की पेशाब-इन्द्रिय के आगे की  
खाल नहीं रहनी चाहिए तो वह उसे वैसे ही बनाता।  
सारा शरीर खुदा बना सकता है तो क्या उतनी-सी खाल  
वह काट नहीं सकता है? उसकी अक्ल में यह बात नहीं  
आयी, जो तुम वह काम पैदा होने के बाद करके उसकी  
अक्ल की गलती का सुधार कर रहे हो!

“शक्ति अनुमाने सुन्नत करतु हो, मैं न बदोंगा भाई।” साहेब कहते हैं कि तुम किसी ईश्वरीय शक्ति का अनुमान कर उसी की आड़ में अपने सारे कानून चलाते हो। तुम कहते हो यह सुन्नत करना भी खुदाई हुक्म है, परन्तु कबीर साहेब कहते हैं कि हे भाई! मैं इसे नहीं मान सकता। यदि ऐसा खुदा करना चाहता तो उसे ऐसा करने में कोई मुश्किल नहीं था। जो इतने बड़े शरीर को बना सकता है, वह उसी के साथ सुन्नत भी कर सकता है। सुन्नत करने से ही आदमी मुसलमान होता है यह सच भी नहीं है। ऐसी स्थिति में मुसलमान कहलाने वालों के घरों की नारियां मुसलमान नहीं कहला सकतीं। किसी भी गृहस्थ-समाज का स्त्री आधा अंग है। इस दृष्टि से मुसलमानों में सदा ही आधे मुसलमान हैं और आधे हिन्दू हैं। पुरुष मुसलमान तथा उनकी नारियां हिन्दू हैं।

कबीर जब मुसलमानों को लताड़ रहे थे, पंडित बहुत प्रसन्न थे कि कबीर ने क्या खूब कहा! कबीर ने पंडितों की तरफ निगाह फेरी और उन्हें भी आड़े हाथों लिया। उन्होंने कहा, हे पंडितो, तुम्हारे ब्राह्मणत्व का चिह्न जनेऊ है। परन्तु यदि जनेऊ पहन करके ही कोई ब्राह्मण होता है तो तुम्हारी घरवाली को क्या कहा जाये! तुमने अपने घर की नारियों को तो जनेऊ पहनाया नहीं, न उनका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, न उन्हें गायत्री मंत्र सुनाया गया और न उन्हें वेद पढ़ने का ही अधिकार दिया गया। उन्हें द्विजत्व संस्कार से एकदम अलग रखा गया। इसलिए तुम्हारे घर की नारियां जन्म से आज तक शूद्रा ही बनी हैं और मरते दम तक वे बेचारी शूद्रा ही रहेंगी। फिर उनका पकाया और परोसा भोजन तुम क्यों खाते हो? तथाकथित ब्राह्मण लोग शूद्रों को अछूत मानते हैं। शूद्र वही है जो यज्ञोपवीत संस्कार से रहित है। इस प्रकार ब्राह्मण के घर की नारियां भी संस्कारहीन शूद्रा ही हैं। आश्चर्य है कि ब्राह्मण नामधारी जीवनभर शूद्रा का ही परोसा भोजन करता है और दूसरे शूद्रों को अछूत कहता है। यह तो ऐसा ही हुआ “अपने मुख की वार्ता, सुनै न अपने कान।” ब्राह्मण कहे जाने वाला अपना ही सिद्धान्त नहीं समझ पा रहा है। जब वह जीवनभर शूद्रा का परोसा खाता ही है तो दूसरे शूद्र कहे जाने वाले बेचारे क्यों अछूत बनाकर रखे जाते हैं!

“हिन्दू तुरुक कहां से आया, किन्ह यह राह चलाया।” कबीर साहेब कहते हैं कि मानव की तो एक जाति है। इसमें द्वैत कहां से आ गया? कबीर साहेब के समय में हिन्दू-तुरुक का जोर था। इसलिए उन्होंने ये दोनों नाम लेकर उन्हें ललकारा। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि वे अन्य मजहब वालों को नहीं कह रहे हैं। कबीर किसी को छोड़ने वाले नहीं हैं। जो भी एक मानवता में विभाजक रेखा खींचता हो, उनमें से किसी को भी कबीर क्षमा करने वाले नहीं हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि मानव एक जाति है तथा मानवता एक धर्म है। इनमें जितनी भेदपरक दीवारें खड़ी की जाती हैं, सब मानव की बनायी हैं। वेद से लेकर बाइबिल, कुरानादि सब किताबें मानव की बनायी हैं। सारे मजहब एवं संप्रदाय मानव के गढ़े हुए हैं और सारे सांप्रदायिक चिह्न मानव के बनाये हुए हैं। साहेब कहते हैं “किन्ह यह राह चलाया” इसलाम का रास्ता, ईसाइयत का रास्ता, हिन्दुत्व का रास्ता या अन्य हजारों रास्ते केवल मनुष्य के चलाये हैं। हां, अपनी गलत और सही सारी बातें समाज से मनवाने के लिए उन पर किसी आकाशीय ईश्वर की मोहर लगा ली है। मजहब वालों ने ईश्वर की अवधारणा का इतना दुरुपयोग किया है कि उसकी आड़ लेकर अपने मत की सारी बकवासों को मनुष्यों पर बलात थोपने का प्रयास किया है।

“दिल में खोजि देखु खोजादे, बिहिस्त कहां ते आया।” मत-मजहब वालों ने सातवें लोक या सातवें आकाश पर स्वर्ग की कल्पना कर रखी है, वहां पर उनमें तामझाम के साथ ईश्वर को बैठा रखा है। सभी ने यह ढिंढोरा पीट रखा है कि हमारे मजहब से चलकर उस स्वर्ग या ईश्वर तक पहुंचा जा सकता है। साहेब कहते हैं कि ये बिहिस्त, स्वर्ग तथा ईश्वर कहां से आ गये? ये ईश्वर और स्वर्ग तुम्हारी कल्पनाएं हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि अपने दिल में खोजो। तुम्हारे दिल के अन्दर की चेतना, दिल के अन्दर का नूर ईश्वर है, खुदा है। वह सब समय सबको प्राप्त है। वह किसी मत-मजहब की डिबिया में नहीं बंद है, किन्तु तुम्हारे दिल में बंद है। तुम किसी ईश्वरीय नामधारी मत-मजहब के मुहताज नहीं हो। किसी तथाकथित ईश्वरीय मोहर लगे हुए कार्ड से

वह नहीं मिलेगा। वह तो तुम्हारे दिल की चीज है। वह तुम्हारी आत्मा है, तुम्हारा अपना स्वरूप है, उसके लिए सच्चे सद्गुरु के निर्देश की आवश्यकता है। तुम्हें बाहर से लौटकर दिल में झांकने की जरूरत है। यही बात स्वर्ग की है। स्वर्ग का टिकट भी किसी मजहबी मोहर से नहीं मिलता। स्वर्ग भी आकाश में नहीं है। वह भी तुम्हारे दिल के भीतर है। जिसके हृदय में पवित्रता और प्रेम की गंगा बहती है उसके हृदय में स्वर्ग है। इसके अलावा कहीं स्वर्ग नहीं है। यदि हमारे हृदय में राग-द्वेष की गन्दगी है, तो मानो यही नरक है। हमें चाहिए कि हम मन को साफ करें और मानव-मात्र के प्रति प्रेम तथा प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव रखें। जिसका दिल शुद्ध है, जिसमें प्राणिमात्र के प्रति करुणा और प्रेम है, वह मानो नित्य स्वर्ग में विद्यमान है।

“कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, जोर करतु हैं भाई। कबिरन ओट राम की पकरी, अन्त चले पछिताई।” साहेब कहते हैं कि हे संतो! ये मजहबी तथा संप्रदायी लोग अपने-अपने गलत-सही विचारों को ईश्वर-निर्देश एवं प्रभुवचन का जामा पहनाकर लोगों पर जोर-जबरदस्ती से लादना चाहते हैं। हमारी किताब प्रभु-वचन एवं खुदाई है, हमारा मजहब ईश्वरीय है तथा हमारे महापुरुष ईश्वर के पुत्र, पैगम्बर या अवतार हैं; ये सारी बातें सत्यज्ञान एवं सत्यधर्म का गला घोटने के लिए हैं। ये सारी बातें जोर देकर लोगों से मनवायी जाती हैं और उनकी बुद्धि में ताला लगा दिया जाता है जिससे वे स्वतंत्र सोच न सकें और उनके मजहब के पशु बने रहें। मजहब, महापुरुष तथा किताबों पर ईश्वरीय मोहर लगाकर उनमें अतिश्रद्धा करायी जाती है और यह अतिश्रद्धा हिंसा का रूप धारण कर आगे खड़ी होती है। अपनी पोथी, मजहब तथा महापुरुष पर ईश्वर का भूत उतारने वालों ने ही ईश्वर और धर्म के नाम पर इनसान का खून बहाया है। अतएव कबीर साहेब यहां अपने दिल के दर्द के साथ कहते हैं कि “जोर करतु हैं भाई”। हे भाई! ये ईश्वर के खतरनाक भक्त अपने तथाकथित ईश्वरीय मजहब के प्रचार के लिए जोर करते हैं। वे कहते

हैं कि यदि हमारी किताब को प्रमाण न मानोगे; हमारे अवतार, पैगंबर एवं ईश्वर-पुत्र को अपना उद्धारक न मानोगे और हमारे सम्प्रदाय एवं मजहब को न कबूल करोगे तो तुम नास्तिक हो, अपवित्र हो या काफिर हो, तुम्हारा नरक होगा, तुम दोख में जाओगे।

इस प्रकार ये जड़मति लोग राम की ओट पकड़कर, ईश्वर की आड़ लेकर जाति, धर्म और अध्यात्म सब में गड्डमड्ड करते हैं। ये मनुष्य की बुद्धि स्वतंत्र नहीं रहने देना चाहते। ये मानव की एक जाति के टुकड़े-टुकड़े करते हैं। ये धर्म को मानवीय गुण तक रहने न देकर उसे बाह्याचार में उलझा देते हैं। ये ईश्वर को मानव की आत्मा से काटकर अलग कर देते हैं। इसलिए इन्हें मानव की हत्या करने में दर्द नहीं लगता। परन्तु ऐसा काम करके मानव को अंत में पछताना पड़ता है। “कबिरन ओट राम की पकरी, अन्त चले पछिताई।”

यहां ‘कबिरन’ शब्द का प्रयोग उनके लिए है जो मतवाद में उलझे हैं। ग्यारहवीं पंक्ति में सद्गुरु ने अपने नाम की छाप लगा दी है “कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो” कहकर। अतएव अब उसके नीचे बारहवीं पंक्ति में ‘कबिरन’ नाम देकर पुनः अपने नाम की छाप लगाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यहां ‘कबिरन’ भूले-भटके लोगों के अर्थ में ही है और प्रायः बीजक भर में ऐसी बात है। बीजक के वें शब्द में पांच बार ‘कबिरा’ तथा ‘कबीरा’ सर्वनाम के अर्थ में कहकर तब सद्गुरु ने छठीं बार में अपने नाम की छाप लगायी है।

धर्म और ईश्वर के ठेकेदारों की सांप्रदायिक भावनाओं, संकीर्णताओं तथा अज्ञान से समाज जिस आग में जल रहा था, उसे देखकर कबीर साहेब का दिल पीड़ित था, इसलिए वे बारम्बार अपनी धारदार वाणियों से उस पर प्रहार करते थे। आज भी कबीर-जैसे सोचने वालों के दिल पीड़ित हैं। वे चाहते हैं कि मानव-मानव के बीच की सारी दीवारें भहराकर ध्वस्त हो जायें, आदमी चित्त-पवित्रता का स्वर्ग-सुख भोगे और ईश्वर के लिए बाहर न भटककर अपने दिल-दरगाह के नूर में लीन हो।

## चलो, जिंदगी की बात करें

लेखक—श्री सुधांशु श्रीवास्तव

आइये क्यों न कल की सुबह एक प्रयोग करें। करना भी कुछ खास नहीं है। बस सुबह से पहले की रात को जिंदगी की सबसे सुहानी यादों की एक फेहरिस्त बनाकर उनमें से किसी एक याद के मोहक पलों को बंद आंखों के परदों पर देखें और देखते-देखते सो जायें। अलसाई सुबह जब जागने को हों तो एक बार फिर किसी अच्छी याद के साथ आंखें खोलें।

यकीन मानिए, यह छोटी-सी कोशिश आपके दिन को खुशनुमा बना सकती है। दरअसल, हमने अपने अतीत और वर्तमान से छॉंट-छॉंट कर नकारात्मकता का ऐसा जखीरा बटोर रखा है कि हम रिश्तों की खुशबू ही भूल गये हैं। कुदरत की स्वर्गिक अनुभूति से दूर हो गये हैं। आसपास के उस अपनत्व से दूर, जो हमारी संजीवनी है।

कुछ ऐसा ही हुआ दुनिया की नामी कंपनी के सीईओ मोहम्मद अल-एरियन के साथ। बात बिल्कुल ताजा है। एक दिन अचानक उन्होंने नौकरी छोड़ दी। सब हतप्रभ थे। सबने सोचा कि कंपनी का कोई अंदरूनी झगड़ा होगा या उन्हें कोई बड़ी जॉब मिल गयी होगी। पर ऐसा कुछ नहीं था। उसका कारण थी उनकी दस साल की बेटी। हुआ यूं कि एक दिन वे घर पर थे और उन्होंने अपनी बेटी से कहा, बेटा, ब्रश कर लो। वह नहीं गयी। बार-बार कहने पर भी जब वह नहीं गयी तो मिजाज में कुछ गर्मी आना स्वाभाविक था। तभी उसने कहा, पापा, एक मिनट। और यह एक मिनट नहीं वह पल था कि भूचाल आ गया। वह लौटी तो हाथ में एक लिस्ट थी। कुल ऐसे सवाल उसमें दर्ज थे, जिनका जवाब मोहम्मद के पास नहीं था। सवाल तो सहज थे, पर रिश्तों की रामायण भी थे। बेटी ने गिनाया, पापा, मेरे स्कूल के पहले दिन आप कहां थे? पेरेंट-टीचर मीटिंग में आप कब गये? तमाम आयोजन, कार्यक्रमों में जहां मैं आपके साथ जाना चाहती थी, वहां अकेले ही गई। आपको मिस किया। दस साल की उम्र में जब-जब मुझे

पापा चाहिए थे, तब आप कहां थे? मोहम्मद क्या जवाब देते। दिल के हर कोने को दस साल की मासूम ने कुरेद दिया था। उन्हें लगा कि उन सवालों का एक ही जवाब है 'इस्तीफा'। जो उन्होंने एक पल गंवाये बिना दे दिया।

दोस्तो, अर्ज यही है कि आप 'इस्तीफा' मत दो। हां, मुमकिन है तो अपनी जिंदगी के बॉस बन जाओ। ठीक वैसे ही जिंदगी को नापो, जोखो और तरमीम दो जैसे कोई बॉस कंपनी चलाता है। मैंने देखा है, लोग ऑफिस में अक्वल रहते हैं। सब काम वक्त पर पूरा करते हैं, पर जिंदगी की किताब के कुछ पन्ने वे पलटते ही नहीं। हम-आप सब जीना तो चाहते हैं, पर जीने की राह पैसे और काम की पटरी पर ऐसी सेट कर लेते हैं कि रिश्तों की गरमाहट सांस तक न ले सके। भूल जाते हैं कि थोड़ी-सी कोशिश आपको तरोताजा कर सकती है।

मैंने देखा है कि घर से फोन आने पर लोग कैसे तलखी से पेश आते हैं। बदसलूकी तक कर बैठते हैं। और जाने-अनजाने घर लौटने पर उस खुशी से दूर हो जाते हैं, जो उनकी ताकत बन सकती थी। एक और घटना बता दूं। बिल्कुल सच। एक दिन एक वरिष्ठ सहयोगी फोन पर इतना तेज चीख रहे थे कि पूरा दफ्तर परेशान था। मैंने उन्हें बुलाया। पता चला बीवी पर चीख रहे थे। वजह साफ थी और जानी-पहचानी भी। हजरत की नौकरी उन्हें से घंटे घर से दूर रखती थी। पत्नी को फोन पर झिड़कते थे। बच्चों से बात नहीं करते थे। नतीजा था 'शक'। उनकी हरकतों ने शक को और पुख्ता कर दिया था। हो न हो कोई चक्कर जरूर है। आदमी भले मानस थे। मेरी बात मान गये। अगले दिन सुबह बजे फोन आया। सर, यह क्या आपने कर दिया। दोनों पति-पत्नी की आंखों में आंसू थे। मुझसे वादा कर रहे थे हमेशा प्यार से रहने का। पूछना चाहेंगे उन्होंने क्या किया? काम के बहाने देर से उठने के आदी इस आदमी ने सुबह पत्नी से पहले उठकर पहली बार चाय बनायी और गमले में लगे गुलाब के फूल को साथ

ले जाकर बीवी को जगाया। प्यार को पंख लगे। शक की गर्द हवा में उड़ गयी। उसे इस्तीफा नहीं देना पड़ा। वह एक बेहतर सहयोगी बन गया। ऐसा कर सकते हैं आप भी, तो आगे बढ़ो, किसने रोका है।

थोड़ा प्रयोगधर्मी बनकर देखिए, सच मानिए खुशियों का पिटारा आपके इंतजार में है। अच्छा, एक प्रयोग और करके देखिए। अगली बार जब किसी भीड़ भरे बाजार में गाड़ी लेकर जायें और कोई स्कूटर, मोटरसाइकिल अड़ाकर आपको रोके, साइड जबर्दस्ती लेने की कोशिश करे, तो शीशे में झांकते हुए गुस्से से मत देखें। गालियां मत दें, बल्कि मुस्करा कर देखें। दिल न चाहे तो भी एक नकली मुस्कराहट तो फैलाकर देखें ही। यह मुस्कराहट एक प्यारी खुशी की तरह सामने वाले की आंखों से दिलोदिमाग में तारी हो जायेगी। वह

आपको जाने की जगह भी देगा और पलटकर मुस्कराहट का रिटर्न गिफ्ट भी। जरा सोचो भाई, एक नकली मुस्कराहट अगर कमाल कर सकती है तो दिल से निकली मुस्कान क्या नहीं कर सकती।

पर मुस्कान तभी मिलती है, जब नकारात्मकता के पिंजरे से बाहर आओगे। मन में अच्छा रखो। सामने वाले के कपट को पहचानो जरूर, पर उसी अच्छाई से काम चलाओ। ऐसा करो तो किसी का क्या बिगड़ेगा। जिंदगी मिली है तो जीने की राह तलाशो। जिंदगी की बात करो। और जी करे तो ये पंक्तियां गुनगुनाओ...

कदम कदम पर जहां मौत इंतजार करे,  
बड़ा मजा है अगर जिंदगी की बात करें।

(साभार : हिन्दुस्तान - - )

## संतो घर में झगड़ा भारी

लेखक—श्री कजोड़ मल मीना

अगस्त को विदेशी गुलामी से हमारा देश आजाद हो चुका है। लेकिन हम कितने आजाद हैं शायद यह कम ही लोग जानते हैं। क्योंकि हम विदेशी दुश्मनों से तो मुक्त हो गये हैं, उनसे तो आजाद हो गये हैं लेकिन हम हमारे अन्दर के दुश्मनों से मुकाबला नहीं कर पा रहे हैं। कारण यह है कि विदेशी दुश्मनों को ताकत विदेश से मिल रही थी परन्तु हमारे अन्दर के दुश्मनों को ताकत हमारे ही अन्दर से मिल रही है जिसका हमें बिल्कुल पता नहीं चलता है और हमारे आंतरिक देश में झगड़ा होता रहता है। ये दुश्मन कभी शांति से रहने नहीं देते, इस पर हमें ध्यान केन्द्रित करना है। जब तक अन्दर के दुश्मनों का नाश नहीं होता तब तक शांति नहीं मिल सकती। मैं अपने निजरूप देश की बात कर रहा हूँ जहां पर चारों तरफ अशांति ही अशांति है। हम इस पर थोड़ा-सा विचार करेंगे। एक मेरे खास मित्र ने मुझे बताया कि—

“आठ-दस दिन से मेरे और मेरी पत्नी में अनबन चल रही है। हम आपस में बोलते नहीं हैं। बात कोई गम्भीर भी नहीं है लेकिन नाक का सवाल है कि पहले बोलने की पहल कौन करे? वैसे मैं कभी नाक नहीं रखता। सदा मेरी नाक नीची ही रहती है लेकिन इस बार अभी तक मेरी नाक ऊंची है। शाम को फल और दूध लेता हूँ। पत्नी से अनबन के कारण उसमें कमी आ गई। फल मुझे ही काट कर खाने पड़ रहे हैं। दूध उसने लाना बन्द कर दिया तो है दूध कैसे मिले। आज . बजे रात को जाग गया। काफी प्रयास करने पर भी नींद नहीं आयी तो मैं साहेब का नाम स्मरण करने लगा। स्मरण करते-करते स्मरण छूट गया और सोचने लगा कि यह परिवार का बन्धन भी कैसा बन्धन है। जब तक स्वार्थ की पूर्ति होती है तब तक तो हम सबको अच्छे लगते हैं और हमें सब अच्छे लगते हैं वरना सब एक दूसरे के दुश्मन हो जाते हैं।”

पारख प्रकाश : जुलाई

मैंने उसे समझाया कि मित्र, इस संसार की रीति ही इसी प्रकार की है। पिता अपने पुत्र से प्रीति नहीं करता है वह स्वार्थ के कारण पुत्र से प्रीति करता है। पुत्र अपने पिता से प्रीति नहीं करता वह भी अपने स्वार्थ के कारण ही पिता से प्रीति करता है, पति पत्नी से प्रीति नहीं करता, पत्नी अपने पति से प्रीति नहीं करती। संसार में कोई किसी से प्रीति नहीं करता केवल स्वार्थ के कारण प्रीति करते हैं। मनुष्य ही नहीं देवता और ऋषि-मुनि भी स्वार्थ के कारण ही प्रीति करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

सुर नर मुनि सब की यही रीति।

स्वारथ लाग करहिं सब प्रीति

धनी धर्मदास साहेब ने कहा है—

गुरुजी मेरे जनम मरण के साथी।

भाई बन्धु सब कुटुम कबीला, सगा सम्बन्धी नाती।

ये सब हैं स्वारथ के साथी, भीड़ पड़े भग जासी

कबीर साहेब ने कहा है—

जपु मन सतनाम सुखदाई।

मात पिता सुत भाई बन्धु त्रिया बहन भुआ भौजाई।

अपने अपने स्वारथ कारण प्रीत करन सब आई

हमारी उम्र बीत जाती है कभी परिवार का झगड़ा समाप्त नहीं होता। हमने दो मिथ्या परिवारों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर रखा है। एक तो तन का परिवार है दूसरा मन का परिवार है। इन तन और मन के परिवारों ने इस शरीर में तबाही मचा रखी है। हम कहते हैं कि हमने मनुष्य जन्म रूप आजादी पा ली है लेकिन विचार करके देखो कि आजादी कहां पायी? हम अपने साहेब को पाना चाहते हैं, हम अपने निज देश आत्मलोक में जाना चाहते हैं। हम उसका स्मरण करते हैं लेकिन ये तन और मन के परिवार इसमें बाधा डालते हैं।

पहले हम थोड़ा तन के परिवार को समझें। तन के परिवार में माता, पिता, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, भाई, बहिन, दादा, दादी, नाना, नानी, नाती, पोते, सगे-सम्बन्धी, दोस्त-दुश्मन, जाति-गोत्र, गांव, प्रदेश, देश, काला, गोरा, आदि-आदि ना जाने क्या-क्या सम्बन्ध हमने स्थापित कर रखे हैं? सारा संसार किसी न किसी

प्रकार से सम्बन्धी है। लेकिन इन सबका सम्बन्ध केवल यह शरीर है तब तक ही है, पीछे इसका सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। इनका सिर्फ जीवन का नाता है। शरीर के अंतिम संस्कार तक ये साथ देते हैं। उसके बाद तो हंस (जीव) अकेला ही जाता है। मनुष्य इसी में अपना अमूल्य जीवन खो देता है और जो आजादी हमने अपने स्वरूप को प्राप्त करने के लिए पायी थी, अपने निज देश 'अमरलोक' में स्थित होने के लिए पायी थी वह वृथा ही चली गयी। हम अपने ही अन्दर के दुश्मनों के चंगुल में फंस जाते हैं। साहेब ने कहा है कि—

मन फूला फूला फिरे जगत में कैसा नाता रे

माता कहै यह पुत्र हमारा, बहिन कहै बिर मेरा।

भाई कहै यह भुजा हमारी, नारि कहै नर मेरा

पेट पकड़ कर माता रोवै, बाँह पकड़ कर भाई।

लपटि झपटि के तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई

जब लग जीवै माता रोवै, बहिन रोवै दस मासा।

तेरह दिन तक तिरिया रोवै, फेरि करै घर वासा

चार गजी चरगजी मंगाई, चढ़ा काठ की घोड़ी।

चारों कोने आग लगा दई, फूंक दिया जस होरी

हाड़ जरे जस जंगल लकड़ी, केस जरे जस घासा।

सोना जैसी काया जल गई, कोई न आयो पासा

घर की तिरिया देखन लागी, दूँढ फिरी चहुँ देशा।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, छाड़ो जग की आशा

जब मैं अपने मित्र की पत्नी के व्यवहार पर सोच रहा था तो विचार आगे बढ़े कि इस तन के परिवार को तो हम सहज ही त्याग सकते हैं। इसका सम्बन्ध तो शरीर तक ही है, इसलिए इसका तो सम्बन्ध छूटना ही है या किसी सम्बन्धी का स्वार्थ पूरा नहीं होगा तो स्वतः ही वह आपका त्याग कर देगा या आप उसे त्याग देंगे। इसको त्यागना कोई बहुत कठिन नहीं है। लेकिन दूसरा मन का परिवार है। यह हमारा साथ जन्म जन्मांतर तक नहीं छोड़ता है। मन के परिवार का विस्तार बहुत अधिक है, हम इस पर थोड़ा विचार करेंगे। एक महंत जी थे श्री शरण दास साहेब, जिनकी जवान अवस्था में आकस्मिक मृत्यु हो गयी थी। वे हमारे घर पर वर्ष में एक बार आया करते थे। अच्छे गायक और प्रवचनकर्ता थे। मैंने

पारख प्रकाश : जुलाई



उनके पास एक कॉपी में कुछ महत्त्वपूर्ण संग्रह किया हुआ देखा था। उसका नाम उन्होंने सार संग्रह रखा हुआ था। उसे मैंने एक बार पढ़ने के लिए अपने पास रख लिया था। उसमें मन के परिवार के बारे में एक चार्ट बनाया हुआ था, वह मैंने ज्यों का त्यों मेरे संग्रह में लिख लिया था। हो सकता है कि उसे किसी विद्वान संत ने अपने तन और मन की खोज करके बनाया हो लेकिन वह काफी हद तक सही है उसी के अनुसार मन के परिवार का संक्षिप्त विवरण यहां दे रहा हूं।

मन की दो स्त्रियां हैं— . प्रवृत्ति और . निवृत्ति। मन का दोनों के साथ सम्बन्ध होता है। जब मन प्रवृत्ति के साथ होता है तो जीव भवसागर की ओर जाता है। चौरासी के चक्र में पड़ जाता है और जब मन निवृत्ति के साथ होता है तो संसार से मुक्ति के मार्ग की ओर होता है। यही हम संतों के सत्संग एवं शास्त्रों में सुनते व पढ़ते आये हैं। सारसंग्रह में लिखा था—

मन की दो स्त्रियां— . प्रवृत्ति, . निवृत्ति।

. प्रवृत्ति के आठ पुत्र हैं—

. मोह, . काम, . क्रोध, . लोभ, . दम्भ, . गर्व, . मद, . अधर्म।

इन आठ पुत्रों की आठ स्त्रियां हैं—

. मिथ्या, . रति, . हिंसा, . तृष्णा, . आशा, . निन्दा, . भ्रंति, . अशांति।

इन आठ पुत्रों के पुत्र ( मन के पोते )—

. अहंकार, . लालच, . अविचार, . ताप, . पाखंड, . अपयश, . विरुद्ध, . अकर्म।

आठ पोतों की स्त्रियां—

. ममता, . कल्पना, . भूल, . चिन्ता, . अविद्या, . अपकीर्ति, . अश्रद्धा, . आसक्ति।

. निवृत्ति के आठ पुत्र—

. विवेक, . विचार, . धैर्य, . संतोष, . भजन, . शील, . धर्म, . वैराग्य।

आठ पुत्रों की आठ स्त्रियां—

. विद्या, . निश्चय, . दया, . तृप्ति, . सिद्धि, . लज्जा, . श्रद्धा, . उदासीनता।

आठ पुत्रों के पुत्र ( मन के पोते )—

. ज्ञान, . प्रीति, . दीन, . आनन्द, . निष्कपट, . सुयश, . प्रकाश, . अभ्यास।

आठ पोतों की स्त्रियां—

. मुक्ति, . प्राप्ति, . दीनता, . करुणा, . पूजा, . कीर्ति, . शुद्धता, . दृढ़ता।

अभ्यास और दृढ़ता के आठ पुत्र—

. यम, . नियम, . आहार, . संयम, . प्रत्याहार, . ध्यान, . धारणा, . समाधि।

फिर और आगे विस्तार किया। वासना पुत्री अज्ञान की अदयापुत्र से विवाह हुआ जिनके सोलह लड़के एवं सोलह लड़कियां उत्पन्न हुए—

सोलह लड़के—

. संशय, . आलस्य, . अनित्य, . भय, . रज, . तम, . कपट, . कुकर्म, . तंत्र, . यन्त्र, . मंत्र, . नाटक, . प्रपंच, . विषय, . विक्षेप, . मकर (आवरण)।

सोलह लड़कियां—

. कलह, . चाह, . कुटिलता, . विषमता, . दाह, . कृपणता, . व्याकुलता, . कुमति, . कामना, . कुचेष्टा, . दुष्टता, . क्रूरता, . आर्जु, . सरौना, . क्रिया, . मृषा।

भक्ति पुत्री प्रेम की दया पुत्र से विवाह हुआ। नौ पुत्र पैदा हुए—

. श्रवण, . कीर्तन, . स्मरण, . उदार, . अर्चन, . बन्दन, . दास्य, . हर्ष, . उदास।

इसी प्रकार सबका विवाह होकर क्या-क्या पैदा करेंगे, इसका अनुमान लगाया जा सकता है और मन के परिवार का विस्तार देखा जा सकता है। हम बाहर के परिवार को तो छोड़ देते हैं, लेकिन यह भीतर का परिवार नहीं छोड़ पाते। कहीं न कहीं हम इनके साथ ही उलझे हुए मिलते हैं। जरा ठहरकर देखें तो हम बुरी तरह इनमें ही जकड़े हुए मिलते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे स्वतंत्रता के सेनानियों (जीवों) को सेल्युलर जेल (लख चौरासी) में बन्द कर रखा है जिसके चारों तरफ

कालापानी (विषय विकार) है। निकलने का कोई रास्ता ही नहीं बचा है। भागने की कोशिश करेंगे तो इनके सैनिक चारों तरफ खड़े हैं। ऐसा लगता है कि ये हमारी सहायता करेंगे लेकिन ये उन्हीं के सिपाही हैं, हमें फिर सेल्युलर जेल (लख चौरासी) में ही ले जाने वाले हैं।

विचार करने पर बाहर के (तन के) परिवार का सम्बन्ध कुछ नहीं है उसको छोड़ना तो सहज है। उसे न भी छोड़ें तो कोई फरक नहीं पड़ता क्योंकि जीवन चलाने के लिए एक दूसरे की आवश्यकता पड़ती है। यदि परिवार को छोड़ देंगे तो किसी और से सम्बन्ध जोड़ना पड़ेगा, क्योंकि शरीर के निर्वाह के लिए जो वस्तु जरूरी है वह तो कैसे भी जुटानी पड़ेगी। उसे अकेला नहीं जुटा सकते इसलिए परिवार में रहना एक दूसरे की आवश्यकता है। सबका एक दूसरे से स्वार्थ है। लेकिन अन्दर का परिवार क्या चाहता है किसी को पता नहीं है? क्योंकि तन के परिवार में ही इतने उलझे पड़े हैं कि अन्दर की खबर ही नहीं है। वह अन्दर ही अन्दर हमारा बहुत बड़ा नुकसान कर रहा है, इसकी तरफ हमारा ध्यान ही नहीं जाता। वह अन्दर-बाहर दोनों जगह अशांति तो फैलाता ही है लेकिन यह प्रवृत्ति का परिवार अन्दर ही अन्दर आपस में भी झगड़ता रहता है। इसके बारे में कबीर साहेब ने एक शब्द में कहा है कि—

संतो घर में झगड़ा भारी

राति दिवस मिलि उठि उठि लागैं पाँच ढोटा एक नारी  
न्यारो न्यारो भोजन चाहे पाँचों अधिक सवादी  
कोई काहू का हटा न माने आपुहि आपु मुरादी  
दुर्मति केर दोहागिनि मेटे ढोटहि चाँप चपेरे  
कहहिं कबीर सोई जन मेरा जो घर की रारि निबेरे

( बीजक, शब्द

ये सब चौरासी की ओर धकेलने वाले हैं। अन्दर के परिवार में हमारी सहायता निवृत्ति से उत्पन्न होने वाला परिवार करता है। वह निस्स्वार्थ हमारी सहायता करता है लेकिन हम उसकी सुनते ही नहीं हैं। अन्दर जो मन के परिवार हैं यह सब हमारे हृदय रूपी घर में रहते हैं, हमारा भी वहीं निवास होता है। प्रवृत्ति का परिवार

आपस में स्वयं भी झगड़ता है और निवृत्ति के परिवार से भी झगड़ता है। निवृत्ति का परिवार आपस में नहीं झगड़ता। इनका स्वभाव सुमति का है।

रामायण और महाभारत इन्हीं की लड़ाई है जो आज भी निरंतर चल रही है। बाहर तो यह लड़ाई हुई थी कि नहीं, यह सौ प्रतिशत नहीं कहा जा सकता, लेकिन अन्दर तो रामायण और महाभारत आज भी चल रहा है और हर घट में महाभारत छिड़ा हुआ है जिसका कभी समाधान नहीं होता। किसी दूसरे के नहीं अपने घट के अन्दर महाभारत को देखो। अपने घट के अन्दर घमासान युद्ध दिन-रात चल रहा है। उसको जरा विचार कर देखो। यह जीव इनके बीच फंसा हुआ दुख-सुख महसूस करता है। वास्तविकता यह है कि इस जीव ने बाहर-भीतर तन और मन का अपना परिवार खड़ा किया हुआ है और इनसे अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है, इसीलिए जन्म-जन्मांतर तक सुख-दुख भोगता है। कभी निवृत्ति के परिवार की जीत होती है तो कभी प्रवृत्ति के परिवार की जीत होती है, लेकिन तटस्थ भाव से साक्षी होकर देखने पर महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि जीत उसी पक्ष की होती है जिसकी तरफ जीव (आपका) का झुकाव होता है। यह जीव का अपना निर्णय है कि वह निवृत्ति के परिवार का साथ देता है या फिर प्रवृत्ति के परिवार का? यदि विवेक जागा है तो अपना भला-बुरा सोचकर अच्छे परिवार के साथ रहता है और यदि विवेक सोया हुआ है तो बुरे परिवार के साथ सहयोग करता है।

दुख और सुख इस जीव को ही भुगतना पड़ता है जो कि इसका असली रूप नहीं है। जीव का स्वभाव अमरत्व का, सहजता का है, सत्यमय है, पारख रूप है, ज्ञान स्वरूप है। हम यदि तटस्थ भाव से देखें तो बाहर का परिवार हमारा कोई नुकसान नहीं करता लेकिन अन्दर के परिवार का सम्बन्ध नहीं टूटा तो हमारा झगड़ा खत्म नहीं होता। वास्तव में झगड़ा इसीलिए है कि हम मन के परिवारों का साथ दे रहे हैं। हमने उससे सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, जबकि सम्बन्ध है ही नहीं। जीव स्वतन्त्र है। उसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सब मन के माने हैं।

पारख प्रकाश : जुलाई

कबीर साहेब ने कहा है कि—

कहैं कबीर यह मनहि है, मन का सकल पसार।  
मन चीन्हे ते अमर है, यह निःअक्षर सार  
यह सब मन की दौड़ है, मन का सकल पसार।  
ज्ञान चीन्ह मन अचल है, कहैं कबीर विचार

यदि हम इन प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के परिवार के झगड़े को, इस मन के पसारे को निष्पक्ष होकर देखें तो झगड़ा अपने आप शांत हो जायेगा। सब अपने-अपने ठिकाने बैठ जायेंगे। आपको प्रभावित नहीं कर पायेंगे। इनमें ताकत सिर्फ जीव के झुकाव के कारण आती है। इनमें अपनी कोई ताकत या शक्ति नहीं है। ये सब आपकी शक्ति से ही जीवित हैं। उसी शक्ति से ये झगड़ा करते हैं और आपको ही दुख-सुख देते रहते हैं अर्थात् जीव स्वतंत्र है। भूल के कारण सम्बन्धों में जकड़ा हुआ है। यदि यह भूल कोई सदगुरु आकर मिटा दें तो जीव तो हमेशा “पीव” ही है। मुक्त ही है। अष्टावक्र गीता में कहा है कि—

धर्माधर्मो सुखं दुःखं मानसानि न ते विभो।  
न कर्ताऽसि न भोक्ताऽसि मुक्त एवासि सर्वदा /  
मुक्ताभिमानि मुक्तो हि बद्धोबद्धाभिमान्यपि।  
किंवदंतीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत् /

“यह धर्म-अधर्म, सुख-दुख सब मन के माने हुए हैं। वास्तविकता में न तू कर्ता है न तू भोक्ता है। तू हमेशा मुक्त ही है। जो अपने आप को मुक्त मानता है वह मुक्त है, और जो बन्धन में मानता है वह बन्धन में है। यह किंवदंती (कहावत) सही है कि मनुष्य की जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है।”

कबीर साहेब ने भी एक जगह कहा है कि—

संतो जीवत ही करु आशा  
मुये मुक्ति गुरु कहैं स्वार्थी, झूठा दे विश्वासा  
जीवत समझे जीवत बूझे, जीयत होय भ्रम नाशा  
जीयत मुक्त जो भये मिले तेहि, मूयेहू मुक्ति निवासा  
मनहि से बन्धन मनहि से मुक्ति, मनहि का सकल विलासा  
जो मन भयो जीयत बस में, नहिं तौ देवे बहु त्रासा

जो अब है सो तबहूँ मिलि है, ज्यों सपने जग भासा  
जहाँ आशा तहाँ वासा होवै, मन का यही तमासा  
जीवत होय दया सतगुरु की, घट में ज्ञान प्रकाशा  
कहैं कबीर मुक्त तुम होवो, जीवत ही धर्मदासा

अब हम विचार करते हैं कि घर-परिवार का तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है। कर्म संस्कारों के कारण इस जन्म में आपस में सम्बन्धी बने हैं। संस्कार समाप्त होने पर, कर्मों का भोग भोगने के बाद, सब अपनी-अपनी करनी के अनुसार कहीं जन्म ले लेंगे या सतगुरु की शरण में जाकर अपने निज देश “आत्मलोक” में स्थित हो जायेंगे। तन के परिवार का सम्बन्ध इतना जटिल नहीं है। उसका सम्बन्ध तो केवल शरीर रहे तक ही है। हम बंधे हुए आ रहे हैं अन्दर के परिवारों से। इनकी जटिलता गहरी है। हमने भूल के कारण गहरा सम्बन्ध मान लिया है। मात्र दो टप्पे की बात है कि यह सम्बन्ध मिथ्या है, सत्य नहीं है। सत्य तो केवल अपना निज स्वरूप ही है। इन सबसे अलग होकर, सम्बन्ध विच्छेद करके जब आओगे तो अपने आप को परमात्मा पाओगे। वही परमात्मा का स्वरूप है, वही तेरा स्वरूप है कोई भेद नहीं है। जब तक इस तथ्य को नहीं जानेंगे तब तक परमात्मा हमसे दूर ही भागता रहेगा, यह भेद मिटने पर स्वयं परमात्मा है, वह नजदीक ही है। इसीलिए कबीर साहेब ने कहा कि—

हाजिर को हजूर गाफिल को दूर।  
आप भुलाना आप को बान्धा आपहि आप।  
जाको तू दूँढत फिरै, सो तू आपहि आप  
सुरति फंसी संसार में ताते परि गयो दूर।  
सुरति फेरि स्थिर करो आठो पहर हजूर

(कबीर शब्दावली)

जब तक हम घर का झगड़ा नहीं मिटायेंगे तब तक कोई भी कबीरपंथी “जीव” कहता रहे, चाहे कोई वेदांती ब्रह्म-ब्रह्म कहता रहे और संन्यासी सोहम-सोहम की रट लगाता रहे, कुछ होने वाला नहीं है।

पारख प्रकाश : जुलाई

---

---

## शंका समाधान

---

---

प्रश्न—अज्ञात।

. प्रश्न—क्या आध्यात्मिक उन्नति के लिए दीक्षा लेना जरूरी है और क्या दीक्षा लेने पर कंठी-माला पहनना जरूरी है?

उत्तर—यह प्रश्न वैसा ही है जैसे कोई बच्चा यह पूछे कि विद्यार्जन करने के लिए क्या विद्यालय में नाम लिखाना-दाखिला लेना जरूरी है और नाम लिखाने के बाद क्या कोई विशेष प्रकार का ड्रेस पहनना जरूरी है? किसी विद्यालय में नाम लिखा लेने मात्र से और विद्यालय द्वारा निर्धारित ड्रेस पहन लेने मात्र से विद्या नहीं आती, किंतु विद्या तो आती है पढ़ने से, फिर भी विद्यालय में नाम लिखाना और विद्यालय द्वारा निर्धारित ड्रेस पहनना जरूरी होता है। उसी प्रकार दीक्षा लेने मात्र से कल्याण नहीं होता, किंतु कल्याण होता है स्वरूपज्ञानपूर्वक संयम-साधना करने से, फिर भी आध्यात्मिक दिशा में उन्नति करने के लिए किसी गुरु से दीक्षा लेना आवश्यक होता है। इससे अपने मन में निष्ठा बढ़ती है। कहीं तो एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहां हम अपने अहंकार को झुका सकें। किंतु अहंकार को झुकना पसंद नहीं है, इसीलिए प्रश्न करता है कि क्या दीक्षा लेना जरूरी है। जिसे आध्यात्मिक उन्नति में लाभ का निश्चय है उसके मन में इस प्रकार का प्रश्न नहीं उठता।

रही बात कंठी-माला पहनने की। जब आदमी भय और प्रलोभन में पड़कर गले में, बांह में, कमर में, पैर में, कलाई में लाल, काला, पीला धागा पहन और बांध लेता है, अनेक प्रकार के गुल्ली, ताबीज, अंगूठी तथा पता नहीं क्या-क्या पहन लेता है तब कंठी-माला पहनने में प्रश्न एवं संकोच क्यों? कंठी-माला एक धार्मिक चिह्न है, इसके पहनने से मन में सात्त्विक भावना आती है, धर्म-भक्ति के प्रति निष्ठा बढ़ती है तथा अनेक लोग इसी के सहारे जीवन पर्यंत दुर्व्यसन, दुराचार, अभक्ष्य भक्षण आदि से बचे रह जाते हैं।

यदि कोई यह समझता है कि किसी गुरु से दीक्षा ले लेने और कोई धार्मिक चिह्न पहन लेने मात्र से उसका आध्यात्मिक विकास हो जायेगा और उसको शांति की प्राप्ति हो जायेगी तो वह भ्रम और भूल में है। दीक्षा लेना या कंठी-माला पहनना तो शुरुआत है, मात्र विद्यालय में नाम लिखाने के समान है। जैसे विद्यालय में दाखिला लेने के पश्चात विद्यार्थी को डटकर पढ़ना पड़ता है तब विद्या आती है, उसका ज्ञान बढ़ता और वह विशेष योग्यता हासिल करता है, वैसे ही जब कोई व्यक्ति दीक्षा लेने के पश्चात स्वाध्याय-सत्संग करते हुए सदाचारपूर्वक संयम-साधना के पथ पर चलता है तब उसका आध्यात्मिक विकास होता है और उसे शांति की प्राप्ति होती है।

यह कहा जा सकता है कि अनेक लोग दीक्षा लेने और कंठी-माला पहन लेने के बाद भी अभक्ष्य भक्षण तथा दुर्व्यसन सेवन करते रहते हैं एवं अनेक प्रकार के दोष-दुर्गुण उनके जीवन में बने रहते हैं, तब दीक्षा लेने का क्या महत्त्व हुआ, तो इसमें दीक्षा लेने एवं कंठी-माला का दोष नहीं है, दोष उस व्यक्ति का है, जो दीक्षा लेने के बाद भी अपने जीवन में सुधार नहीं करता। जैसे कोई नेता या अफसर पद ग्रहण करने के पूर्व निष्ठा पूर्वक देश-सेवा करने की शपथ तो लेता है, किंतु शपथ लेने के बाद देश-सेवा न कर व्यक्तिगत स्वार्थ और महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में लग जाता है, तो दोष उस नेता या अफसर का है जो देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, न कि शपथ ग्रहण करने का।

खास बात यह है कि जो सेवा-भक्ति-धर्म के पथ पर चलते हुए आध्यात्मिक विकास करना और आत्म कल्याण करना चाहता है उसके लिए किसी गुरु से दीक्षा लेकर उससे जुड़ना आवश्यक है। हां, दीक्षा तभी लेनी चाहिए जब अपना स्वयं का मन हो, किसी के जोर-जबर्दस्ती करने से नहीं। किसी संत या गुरु का बड़ा मठ-आश्रम देखकर, मठ में बहुत धन देखकर, किसी को बड़ा विद्वान-लेखक-प्रवक्ता देखकर, किसी के प्रवचन में बड़ी भीड़ देखकर या किसी के लाखों शिष्य देखकर देखादेखी भावुकतावश उससे दीक्षा नहीं ले लेना

पारख प्रकाश : जुलाई

चाहिए, किंतु दीक्षा उस संत या गुरु से लेना चाहिए जिसका ज्ञान और आचरण-चरित्र ठीक हो। ज्ञान वही ठीक है जो प्रकृति की कारण-कार्य-व्यवस्था के अनुसार तथा विश्व के शाश्वत नियमों के अनुकूल हो। जिसमें किसी प्रकार का अंधविश्वास, चमत्कार, भ्रम एवं कल्पना न हो।

. प्रश्न—कहा जाता है कि बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता और आध्यात्मिक विकास के लिए गुरु आवश्यक है, तो कबीर साहेब के गुरु कौन थे?

उत्तर—बिना गुरु के न तो हम बोलना सीख सकते हैं और न चलना-फिरना, खाना-पीना आदि। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसमें गुरु की आवश्यकता न हो। किसी भी दिशा-क्षेत्र में आदमी जो कुछ भी जानता है वह किसी-न-किसी गुरु द्वारा सिखाने-बताने से ही जानता है, तब आध्यात्मिक दिशा, जो जीवन की सर्वोच्च दिशा है, उसमें कोई बिना गुरु के मार्ग-निर्देशन के विकास कैसे कर सकता है! जो आदमी जिस दिशा-क्षेत्र में सफलता-विशेषज्ञता प्राप्त करना चाहता है उसे उस दिशा-क्षेत्र में विशेषज्ञ-निष्णात गुरु की आवश्यकता होगी ही, यद्यपि मेहनत-साधना व्यक्ति को स्वयं ही करना होगा। परंतु जैसे हर नियम का अपवाद होता है वैसे यहां भी कभी-कभी किसी-किसी व्यक्ति में अपवाद देखा जाता है कि वे प्राकृतिक घटनाओं को देखकर, लोगों के क्रियाकलाप, गुण-दोषों को देखकर बहुत-कुछ सीख-समझ लेते एवं विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें किसी गुरु विशेष के निर्देशन की खास आवश्यकता नहीं पड़ती, यद्यपि इसके लिए उन्हें अनेक लोगों से प्रेरणा ग्रहण करनी पड़ती है। ऐसे लोगों को ही पूर्वजन्मों के संस्कारी कहा जाता है।

कबीर साहेब के गुरु के संबंध में लोक प्रचलित धारणा यही है कि स्वामी रामानंद उनके गुरु थे। परंतु स्वामी रामानंद और कबीर साहेब के विचारों-सिद्धांतों के अंतर को देखते हुए यह मत उचित नहीं जान पड़ता। स्वामी रामानंद मूर्तिपूजा, अवतारवाद, वर्णव्यवस्था के कट्टर समर्थक थे जबकि कबीर साहेब घोर विरोधी, तब स्वामी रामानंद कबीर साहेब के गुरु कैसे हो सकते हैं! इसके अतिरिक्त स्वामी रामानंद दाशरथि राम को पूर्ण परब्रह्म परमात्मा मानकर उनकी

उपासना करने वाले थे, जबकि कबीर साहेब की दृष्टि में वे अन्य मनुष्यों की तरह एक मनुष्य थे, जिन्होंने अपने कर्मफल के अनुसार सुख-दुख भोगकर अपना जीवन व्यतीत किया था। कबीर साहेब की तो स्पष्ट घोषणा है—दाशरथ सुत तिहुँ लोकहिं जाना, राम नाम का मर्म है आना कबीर का राम न दाशरथि राम है और न आकाशीय, किन्तु घट-घट वासी है, ऐसी स्थिति में स्वामी रामानंद कबीर साहेब के गुरु कैसे हो सकते हैं?

यह हो सकता है कि अपनी किशोर अवस्था में कबीर साहेब स्वामी रामानंद के संपर्क में आये हों और उनसे कुछ सीखे भी हों, परंतु किसी के संपर्क में आने मात्र से वह गुरु नहीं हो सकता। संवेदनशील प्रतिभा संपन्न पुरुष जब जड़-जगत-प्रकृति में घटित होने वाली घटनाओं, पशु-पक्षी तक से प्रेरणा ले लेते हैं और बहुत कुछ सीख-समझ जाते हैं तब स्वामी रामानंद तो मनुष्य थे और उसमें ज्ञानी, विद्वान, त्याग-वैराग्य संपन्न संत थे, कबीर साहेब ने उनसे कुछ सीखा-समझा हो तो इसमें क्या आश्चर्य! संवेदनशील सारग्राही व्यक्ति अपने से भिन्न विचार रखने वालों से ही नहीं, अपितु विरोधी विचार रखने वालों से भी सार ग्रहण कर लेता है। जैसे यह कहना गलत है कि स्वामी रामानंद कबीर साहेब के गुरु थे वैसे यह कहना भी गलत है कि कबीर साहेब ने स्वामी रामानंद से कुछ भी नहीं सीखा-समझा है। स्वामी रामानंद से ही नहीं कबीर साहेब ने बहुत-से संतों, अवधूतों, योगियों और न मालूम कितने लोगों से सीखा-समझा होगा। कबीर साहेब ही नहीं, हर आदमी अनेक लोगों से सीखता-समझता है और जीवनपर्यंत सीखता-समझता है यदि वह जड़ नहीं हो गया है तो परंतु जिस-जिस से वह सीखता-समझता है वह सब गुरु तो नहीं हो जाते। गुरु तो कोई व्यक्ति-विशेष ही होता है।

जैसे गृह-त्याग कर निकलने के बाद प्रारंभिक वर्षों में सिद्धार्थ तत्कालीन ज्ञात-अज्ञात अनेक त्यागियों, विद्वानों, दार्शनिकों, गुरुओं के पास गये, उनसे कुछ सीखे-समझे परंतु जिज्ञासा-शंका का पूरा समाधान न मिलने और संतोष न होने से आगे बढ़ते गये और सबको छोड़कर साधना में लग गये वैसे कबीर साहेब अपनी जिज्ञासा और खोजी प्रवृत्ति के कारण निश्चित ही

## मैं कहता आँखन देखी

लेखक—रमेशदास

सद्गुरु कबीर साहेब का अपना कोई पंथ नहीं था, कोई पुस्तक नहीं थी और न बाहरी कोई ईश्वर था। वे अपनी बात कहीं एकांत कमरे में बैठकर नहीं कहते थे बल्कि बीच चौराहों में, बाजारों में पुकारकर कहते थे। सद्गुरु कबीर साहेब के विचार पण्डित-मुल्लाओं की मान्यताओं के विपरीत जा रहे थे। इसलिए उनकी बातों को सुनकर राजसत्ता और पुरोहित सत्ता दोनों हिल गयीं और उनके विरोध में खड़े हो गये। उनको काफी यातनाएं दी गयीं परन्तु सद्गुरु कबीर उन यातनाओं को अमृत की तरह पी गये और अपना प्रचार बंद नहीं किये। उन्हें तो न जीने की चिंता थी और न मरने का भय था। उनको तो सत्य में रहना था और सत्य को ही कहना था। धीरे-धीरे उनके पीछे जनता की एक विशाल फौज तैयार हो गयी। वह अपने सिर पर उन्हें उठाकर चलने लगी। जनता उन्हें अपना मसीहा मानने लग गयी तथा पूरे भारत और भारत के बाहर सद्गुरु कबीर साहेब के विचार इस तरह फैल गये जिस तरह पानी पर तेल फैलता है।

अनेक सूफी फकीरों, अवधूतों, योगियों, तपस्वियों, विद्वानों, संतों के पास गये होंगे और सीखे-समझे होंगे, परन्तु पूरा समाधान और संतोष न मिलने के कारण सबको छोड़कर आगे बढ़ गये। जैसे जिस ज्ञान के कारण तथागत बुद्ध प्रसिद्ध हुए वह ज्ञान उन्हें किसी गुरु से प्राप्त न होकर उनका स्वयं का उपार्जित था तथा देश-दुनिया को देख-समझ उन्होंने स्वयं उसका शोधन किया था, कोई व्यक्ति-विशेष उनका गुरु नहीं था, वैसे जिस ज्ञान के कारण कबीर साहेब प्रसिद्ध हुए और संत शिरोमणि कहलाये वह ज्ञान उनका स्वयं का शोधा और उपार्जित था, किसी व्यक्ति-विशेष से उसे उन्होंने नहीं पाया था, इसलिए कोई व्यक्ति विशेष उनका गुरु नहीं था। उस ज्ञान के लिए वे स्वयं अपने गुरु थे। कह सकते हैं कि उनका विवेक, उनकी शोधन शक्ति ही उनका गुरु था।

—धर्मेन्द्र दास

आज से पचीस सौ वर्ष पूर्व चीन के महान संत लाओत्जे ने जिस प्रकार विश्व के शाश्वत नियमों की व्याख्या की है, जिसे उन्होंने 'ताओ' कहा है। सद्गुरु कबीर साहेब ने आज से पांच सौ वर्ष पूर्व उन नियमों को बहुत गहराई से देखा और जनभाषा में लोगों को समझाने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि सृष्टि का कोई कर्ता-धर्ता नहीं है बल्कि यह स्वयं संचालित है। प्रकृति के मूल तत्त्व परमाणुओं में स्वाभाविक नित्य गति है जिसके कारण वस्तुओं का निर्माण-विनाश होता रहता है।

सद्गुरु कबीर साहेब से एक पण्डित ने कहा— कबीर साहेब, आप मुसलमानों को फटकारते हैं, उनकी गलतियों पर उन्हें टोकते हैं तो लगता है कि आप हमारे हैं लेकिन आप हिन्दुओं के पण्डितों को उनकी गलतियों पर टोकते हैं तो लगता है कि आप हमारे नहीं हैं। इसलिए आप ही बतायें कि आप हैं कौन, हिन्दू या मुसलमान? सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा—

*हिन्दू कहौं तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।*

*पाँच तत्त्व का पूतरा, गैबी खेलै माहिं*

आज तक के इतिहास में हिन्दू-मुस्लिम परम्परा में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ है जो दोनों की गलतियों पर दोनों को फटकारते रहे हों और दोनों के प्रिय बने रहे हों। सद्गुरु कबीर ही एक ऐसे महापुरुष हैं जो दोनों को फटकारते भी हैं और दोनों के प्रिय भी बने रहे। इसी कारण उनके शरीर छूटने के बाद हिन्दू और मुसलमान दोनों अपनी-अपनी परंपरा के अनुसार अंतिम संस्कार करते हैं। आज भी मगहर में हिन्दू और मुसलमानों द्वारा बनायी गयी समाधि अलग-अलग देखी जा सकती हैं।

सद्गुरु कबीर साहेब के देहावसान के बाद निर्गुणी धारा के सन्तों का एक प्रवाह चल पड़ा। सद्गुरु कबीर साहेब को संत परंपरा का प्रवर्तक माना जाने लगा। इस परंपरा में अनेक संत हुए हैं जिन्होंने निर्गुणी धारा को

पारख प्रकाश : जुलाई

अविरल रूप से प्रवाहित होने में पूर्ण सहयोग दिया। सद्गुरु कबीर साहेब जैसा महान व्यक्तित्व लेकर आज तक कोई संत नहीं हुआ। उनको संत परम्परा संत मानती है, आलोचक अपना आचार्य मानते हैं, कवि अपना प्रेरणास्रोत मानते हैं, योगी उन्हें परम योगी मानते हैं, समाज सुधारक अपना अगुआ मानते हैं, हिन्दू गुरु और मुसलमान अपना पीर मानते हैं।

आज भी हिन्दू-मुस्लिम के झगड़ों में समाधान के रूप में सद्गुरु कबीर साहेब ही दीखते हैं। इसीलिए उस समय सरकार द्वारा रेडियो और दूरदर्शन से कबीर साहेब के भजन प्रसारित किये जाते हैं।

सद्गुरु कबीर साहेब का जिस समय प्रादुर्भाव हुआ उस समय समाज की दशा बड़ी दयनीय थी। हिन्दू और मुसलमान थोड़ी-थोड़ी तुच्छ बातों को लेकर एक दूसरे का गला काटने के लिए तैयार हो जाते थे। भारत छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटा हुआ था। इसमें अनेक राजा-सामंत हुआ करते थे जो आये दिन एक दूसरे पर हमला किया करते थे। जनता उससे तबाह हो जाती थी। आस्तिक और नास्तिक का झगड़ा प्रायः ठन ही जाता था। लोगों में जाति-पांति को लेकर ऊंच-नीच की प्रबल भावना थी। धर्म के क्षेत्र में भी एक दूसरे पन्थ को लोग छोटा सिद्ध करने में लगे हुए थे। इस प्रकार मानवता मनुष्य की करनी से दुखी होकर रो रही थी।

ऐसे संक्रमण काल में सद्गुरु कबीर ने आकर मानवता को सहारा दिया और मनुष्यों के अंदर मानवता पैदा करने का पुरजोर प्रयास किया। उन्होंने कहा कि राम-रहीम, ईश्वर-अल्लाह सब तो एक ही सत्य तत्त्व के पर्याय हैं, तुम नामों को लेकर क्यों उलझते हो? नाम से बड़ा नामी होता है उसको समझो, उसको जानो।

- 
- . भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बोराया।  
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया  
(बी. शब्द
  - . मैं तोहि पूछों पंडिता, शब्द बड़ा कि जीव।

सद्गुरु कबीर साहेब इतने सावधान हैं कि वे सर्वत्र अपने को बचाकर चलते हैं। वे सबकी कसर खोत कहते हैं परन्तु उसमें उलझते नहीं हैं। सद्गुरु कबीर साहेब में फक्कड़पन अद्भुत था। वे कहकर रुकते नहीं हैं किन्तु चलते-चलते कहते हैं। वे कहते हैं कि मानोगे तो तुम्हारा हित है और नहीं मानोगे तो भला कौन क्या कर सकता है? सद्गुरु कबीर साहेब के मूल ग्रंथ बीजक को देखने से पता चलता है कि वे मूल रूप में संत थे। ज्ञान की बातों की अपेक्षा खण्डन-मण्डन की बातें बहुत कम हैं। ज्ञान चौतिसा, कहरा, बसंत, बेलि, हिंडोला और साखी प्रकरण तो पूरा आध्यात्मिक ज्ञान से भरा हुआ है। जहां पर खण्डन है भी वहां बहुत थोड़ा है। अधिकतम तो ज्ञान की चर्चा है।

वे कभी यह परवाह नहीं करते हैं कि धार्मिक कही जाने वाली पुस्तकों में क्या लिखा है? धार्मिक नेता क्या कह रहे हैं? और जनता क्या मान रही है? बल्कि जो उनको विवेक की दृष्टि से सच्चा लगा, जो कारण-कार्य व्यवस्था के भीतर हैं उन बातों को उन्होंने सार सत्य माना। बाकी को छिलके की तरह उड़ा दिया। जैसे डॉक्टर जब किसी मरीज का आपरेशन करते हैं तो उनकी दृष्टि मरीज के अन्य अंगों पर नहीं होती है किन्तु मरीज के उस रोग पर होती है जिससे मरीज पीड़ित है। ठीक ऐसे ही सद्गुरु कबीर ने सभी प्राप्त विचारों का आपरेशन किया और एक स्वस्थ समाज का निर्माण किया। वे अध्यात्म जगत के कुशल सर्जन थे।

सद्गुरु कबीर साहेब आस्था के महान पुजारी थे। वे सबका आदर करना जानते थे, किन्तु आंख मूंदकर नहीं बल्कि विवेकपूर्वक। वे कहते हैं कि कहीं लिखी होने से बात सही नहीं होती है, किसी के कह देने मात्र से बात सही नहीं होती है। किन्तु क्या लिखा है और क्या कहा गया है, इस पर विवेक करने की आवश्यकता है। विवेकपूर्वक बात ही सही उठरती है। किसी कवि ने कितना अच्छा कहा है—

- 
- . मैं कहता हूँ आँखन देखी, तू कहता कागद की लेखी

(कबीर भजनावली)

पारख प्रकाश : जुलाई

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।  
अन्य तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मयोनिनः

अर्थात्—युक्तिपूर्वक कहे हुए सत्य वचन बालक के भी मननीय हैं और असत्य वचन पद्मयोनि ब्रह्मा के भी हों तो भी तृण के समान त्याज्य हैं।

युक्तियुक्तं वचो ग्राह्यं बालादपि शुकादपि।  
युक्तिहीनं वचस्त्याज्यं वृद्धादपि शुकादपि

अर्थात्—युक्तिपूर्वक कहे हुए वचन बालक और तोते के भी ग्रहण करने योग्य हैं परन्तु युक्तिहीन वचन कोई विद्वान या शुकदेव ही कहें, तो सर्वथा त्यागने योग्य हैं।

वैज्ञानिक जगत में जब कोई वैज्ञानिक एक सिद्धांत प्रतिपादित करके चला जाता है तो आने वाली वैज्ञानिक पीढ़ी उस सिद्धांत को ऐसे ही नहीं मान लेती है, बल्कि उस पर रिसर्च करती है। बात सही लगती है तब मानती है अन्यथा रद्द कर देती है। यही है परख करना, विवेक करना। लेकिन धर्म के क्षेत्र में प्राचीन काल से सभी संप्रदायों में शास्त्रों की बातों को आप्त वचन कहकर उनपर तर्क करने को अपराध माना गया। और कहा गया कि जो शास्त्रों की बातों पर तर्क करेगा वह नास्तिक है। धर्म के क्षेत्र में आदमी को इतना मूढ़ बना दिया जाता है कि उसकी सोचने-विचारने की शक्ति समाप्त हो जाती है।

सद्गुरु कबीर साहेब के काल में धार्मिक कट्टरता बहुत ज्यादा थी। कोई अपने धार्मिक ग्रंथ को ईश्वर द्वारा लिखकर भेजा हुआ बता रहा था, कोई अपने इष्ट को ईश्वर-पुत्र कह रहा था, कोई अपने इष्ट को ईश्वर का पैगम्बर (संदेशवाहक) कह रहा था, कोई अपने इष्ट को ईश्वर ही मान रहा था। सब अपने को श्रेष्ठ और दूसरे को नास्तिक कह रहे थे। सब अपने-अपने मतों में मतवाले थे। यह भी कहा जाता था कि हमारे ही सम्प्रदाय से, हमारे ही इष्ट के मानने से आदमी स्वर्ग में जा सकता है। दूसरे सम्प्रदाय में रहकर कोई कितना भी त्याग-तपस्या, दान-परोपकार कर ले उसे तो नरक में ही जाना है।

सद्गुरु कबीर साहेब ने सबको फटकारा और कहा कि किसी का पंथ-सम्प्रदाय ईश्वर द्वारा चलाया गया नहीं है। किसी की पुस्तक ईश्वरीय नहीं है और न कोई अवतार इस धरती पर आता है। उन्होंने कहा कि जितने भी महापुरुष हैं सब केवल मानव हैं। अपने अच्छे कर्मों से वे महापुरुष कहलाये। कोई पुस्तक ईश्वरीय नहीं है। अपितु सभी मानव द्वारा रचित हैं।

सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं कि किसी पुस्तक को एक सिरे से मान लेने से, किसी मत-सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाने मात्र से कल्याण नहीं होता किन्तु उनमें से सार-सार बातों को ग्रहण करके जीवन आचरण करने से कल्याण होता है। वे कहते हैं—

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।  
सार सार को गहि रहै, देइ असार बहाय

शब्द शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजै।  
कहहिं कबीर जहाँ सार शब्द नहीं, धृग जीवन सो जीजै  
(बीजक, साखी- )

वेद के ऋषि भी कहते हैं—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचम क्रत।  
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि  
(ऋग्वेद / / )

अर्थात् जैसे चलनी से सत्तू छाना जाता है वैसे विवेकवान मन से वाणी को छानते हैं। जहां मन से वाणी को छाना जाता है वहीं कल्याणकारी लक्ष्मी निवास करती है और वहीं मित्र लोग मित्रता के भेद को जानते हैं।

सद्गुरु कबीर कर्मकरों के पक्षधर थे। वे हर क्षेत्र में कर्म करने पर ही विश्वास करते थे। वे कहते हैं कि मनुष्य को समाज का बोझ बनकर नहीं रहना चाहिए। बल्कि अपने कर्मों के द्वारा समाज की सेवा करनी

जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा।

कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा

(बी. शब्द )

पारख प्रकाश : जुलाई



चाहिए। अध्यात्म के क्षेत्र में भी उन्होंने कर्म पर ही विश्वास किया। उन्होंने कहा कि जीव का कल्याण अपने कर्मों को सुधारने से होगा। किसी की कृपा और कोप से कुछ नहीं होने वाला है। किसी ईश्वर के भरोसे कल्याण की बात सोचना अपने को धोखे में रखना है। सद्गुरु कबीर साहेब स्वयं कपड़ा बुनने का काम करते थे। वे कभी आलसी बनकर नहीं बैठे, बल्कि जब तक उनके शरीर में सांस रही तब तक वे घूम-घूमकर जनकल्याण का काम करते रहे।

सद्गुरु कबीर का सौदा नगद का है। वे यह नहीं कहते कि आज पुण्य करोगे तो अगले जन्म में उसका फल मिलेगा। बल्कि वे कहते हैं कि कर्मों का फल आज और इसी जन्म में मिलने वाला है। वे मरने के बाद स्वर्ग और मुक्ति का प्रलोभन नहीं देते हैं, वे जीते जी इसका अनुभव करने के लिए कहते हैं। उनका साधना मार्ग सीधा और सरल है। वे कहते हैं कि आदमी हर समय अपने कल्याण का काम कर सकता है, उसका हर काम पूजा बन सकता है। बशर्ते उन कामों को एकाग्रतापूर्वक और समर्पण भाव से करे। जिस काम में जितना समर्पण होता है वह काम उतना ही सुंदर और व्यवस्थित होता है।

उनके काल में धर्म के क्षेत्र में कोई भक्ति पर जोर देता था कि भक्ति से ही सब कुछ मिल जायेगा। कोई ज्ञान पर जोर देता था कि ज्ञान ही सब कुछ है। इसके आगे कुछ नहीं है और कोई कर्म को ही श्रेष्ठ बतलाता था। सद्गुरु कबीर ने कहा कि जीवन में भक्ति, ज्ञान और कर्म इन तीनों की आवश्यकता है किन्तु

- . कहहिं कबीर कुछ उद्यम कीजै, आप खाय औरों को दीजै
- . लोग भरोसे कौन के, बैठ रहे अरगाय।  
ऐसे जियरहिं जम लूटे, जस मटिया लूटे कसाय  
(बी.सा. )
- . देश विदेशे हैं फिरा, गाँव गाँव की खोरि बी.सा.
- . जियत न तरेउ मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै  
(बी. शब्द )
- . जहं जहं डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो पूजा  
(कबीर भजनावली)

विवेकपूर्वक। जैसे हमारे शरीर में भोजन, पानी और हवा—इन तीनों की जरूरत पड़ती है। केवल भोजन करें, पानी और सांस न लें तो जीवन नहीं चल सकता है। केवल पानी पीयें, भोजन और सांस न लें तो भी जीवन चल नहीं सकता है और केवल सांस लें, भोजन और पानी न खायें-पीयें तब भी जीवन नहीं चल सकता है। दूसरा उदाहरण—जैसे हमें भोजन बनाना है तो भोजन बनाने के प्रति भक्ति चाहिए, ज्ञान भी चाहिए कि भोजन कैसे बनाना है? और कर्म भी चाहिए। भोजन बनाने के प्रति भक्ति और ज्ञान तो है लेकिन कर्म नहीं है अर्थात् बनाना प्रारम्भ नहीं करते हैं तो भोजन कैसे बनेगा? ऐसे ही आत्मशांति-आत्मकल्याण के लिए भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों की आवश्यकता है।

हम कहां जन्म लिये हैं? हमारी मान्यताएं क्या हैं? हमारी जाति क्या है? हमारा संप्रदाय क्या है? हमारी धार्मिक पुस्तक क्या है? हमारी साधना पद्धति क्या है? हमारी पूजा पद्धति क्या है? हम चोटी रखते हैं या जनेऊ पहनते हैं? दाढ़ी रखते हैं या खतना करवाते हैं? मंदिर जाते हैं या मस्जिद जाते हैं? इनसे जीवन में कोई खास फर्क नहीं पड़ता है। फर्क पड़ता है जीवन में आचरण से। जिन कामों के लिए हमारे इष्ट, हमारे पूज्य मना कर गये हैं उन कामों को न करना और जिन कामों को करने के लिए कहा गया है उन कामों को करना—यही असली पूजा है, असली भक्ति है और असली ज्ञान है।

लेकिन केवल अपने मत की दोहाई देते रहना, अपने महापुरुषों आदि की दोहाई देते रहना उसी प्रकार है जैसे कोई मरीज ऊंचे डॉक्टर के पास जाकर मंहगी दवा खरीद लाये और उसे न खाये और कहता फिरे कि मैं ऊंचे डॉक्टर के पास जाकर बड़ी मंहगी दवा खरीद ले आया हूँ। तो क्या ऐसा कहने से उसका रोग दूर हो जायेगा। रोग तो दूर होगा उस दवा के परहेजपूर्वक खाने से। वैसे मन का रोग, दुख मिटेगा ज्ञान का आचरण करने से। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जस कथनी तस करनी, जस चुंबक तस ज्ञान।  
कहहिं कबीर चुंबक बिना, क्यों जीते संग्राम॥

पारख प्रकाश : जुलाई

## धर्म और पूजा की सार्थकता

ज्ञान की चर्चा जो हम सुनते हैं, धर्मग्रन्थों का पाठ करते हैं, पूजा-पाठ इबादत करते हैं या अन्य और जो कुछ धार्मिक कृत्य करते हैं उन सबका अर्थ क्या है उनकी चरितार्थता किसमें है? दो ही बातों में है—प्राणी मात्र के साथ निर्वैरत्व की भावना और जीवन की निर्मलता।

दुनिया बड़ी विशाल है। इसमें अनेक मत-पंथ, सम्प्रदाय एवं परम्परायें हैं। सबके अपने-अपने नियम, पूजा-पाठ, नाम-जप, कर्मकाण्ड हैं। इनमें हम न किसी को छोटा कह सकते हैं और न किसी को बड़ा। वैसे हर सम्प्रदाय वाला अपने पूजा-पद्धति, कर्मकाण्ड, नाम जप और मंत्र को सबसे बड़ा मानता है और दूसरे का छोटा, लेकिन यह एक साम्प्रदायिक भावना है।

हम अपने कर्मकाण्ड, नामजप, उपासना पद्धति को बड़ा भले मानें, लेकिन दूसरे की उपासना पद्धति को छोटा कहने का अधिकार हमें नहीं है। अपनी उपासना पद्धति को, अपने महापुरुष को बड़ा मानने से उनके प्रति श्रद्धा-निष्ठा होती है, समर्पण होता है। लेकिन जहां हमने दूसरे को छोटा और गलत मानना शुरू किया बस वहीं पर साम्प्रदायिक भावना बढ़ती है, कटुता बढ़ती है और मारामारी शुरू हो जाती है।

यदि दुनिया के सभी मत-पंथ, सम्प्रदाय और मजहब वाले अपने-अपने सम्प्रदाय-मजहब के नियमों का पालन करें और दूसरे सम्प्रदाय-मजहबों के नियमों को आदर दें तो यह दुनिया स्वर्ग बन जायेगी। अपने विचारों को कहें, दूसरों के सामने प्रस्तुत करें और दूसरे के विचारों को सुनें, यह मेल-मिलाप, एकता-समता का बढ़िया तरीका है। किन्तु लोग अपनी मजहबी भावना में इतने कट्टर हो जाते हैं कि दूसरे के विचारों को मानना तो दूर सुनना तक नहीं चाहते। नाना मजहबों-सम्प्रदायों में या एक ही मजहब की विभिन्न शाखाओं में परस्पर जो कटाकटी है, दूरी है उसका कारण यही है कि लोग एक-दूसरे के विचारों को सुनना-जानना भी नहीं चाहते। एक साथ बैठकर विचार-विमर्श नहीं करते।

हम यह मान लेते हैं कि जो कुछ हम जान रहे हैं या मान रहे हैं या हमारे महापुरुषों ने कह दिया है सत्य

उतना ही है। लेकिन सत्य को अपने सम्प्रदाय की डिब्बिया में बन्द करना सत्य को न समझना है। सत्य अत्यंत विशाल है। उसी को पाने के लिए नाना मत-मजहब बने हुए हैं। जैसे धरती बहुत बड़ी है, नित्य और अनादि है। धरती पर सड़कें बनतीं और बिगड़ती रहती हैं; मेड़ें बनतीं और बिगड़तीं रहती हैं किन्तु सड़कों-मेड़ों के बनने और बिगड़ने से धरती में कोई अन्तर नहीं होता, वह वही की वही रहती है।

ऐसे ही सत्य वही होता है, एकरस और शाश्वत होता है। सम्प्रदाय, मत, मजहब बनते और बिगड़ते रहते हैं। आज दुनिया में जितने भी सम्प्रदाय, मत, मजहब, पंथ, परम्पराएं हैं, कोई शाश्वत नहीं है। आज की सारी परम्पराएं, सारे सम्प्रदाय, जिन्हें हम धर्म भी कह देते हैं; हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म आदि, इनमें से तीन हजार साल पहले का कोई नहीं है। सबके सब तीन हजार साल के भीतर के ही हैं। लेकिन धर्म नित्य, शाश्वत और सनातन है। उसी धर्म को पाने के लिए, उसके अनुसार चलने के लिए परम्पराएं, सम्प्रदाय, मजहब बनते हैं। हम सच्चे धर्म को भूल जाते हैं और रास्तों में अटक जाते हैं। गड़बड़ियां यहीं होती हैं। इसलिए हम सच्चे धर्म को समझें।

अच्छाई कहां नहीं है? कौन-सी परम्परा ऐसी है जिसमें अच्छाई न हो, सत्य का अंश न हो? और कौन-सी परम्परा ऐसी है जिसमें कोई बुराई न हो? दूध का धोया कौन है? खोजने पर सब में दोष मिल सकते हैं। इसलिए सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—

*नग पषाण जग सकल है, पारख बिरला कोय।*

*नग ते उत्तम पारखी, जग में बिरला होय*

(बीजक, साखी )

संसार में नग और पषाण अर्थात् सत्य और असत्य, अच्छाई और बुराई सर्वत्र हैं। निष्पक्ष होकर उनको परखने की आवश्यकता है।

आदमी पक्षपाती बन जाता है, एकांगी दृष्टि वाला होता है और जहां पक्षपात आयेगा, एकांगी दृष्टि आयेगी वहां हम दूसरे की अच्छाई को समझ नहीं सकते। आवश्यकता है दृष्टि को संतुलित बनाये रखने की,

पारख प्रकाश : जुलाई

पक्षपात रहित होकर सत्य का अन्वेषण करने की, सत्य का आचरण करने की। जो सत्य को समझ लेगा, सत्य का आचरण करेगा वह अनुचित ढंग से किसी का खण्डन नहीं करेगा। अपनी बात कहेगा। सत्य का मंडन करते चलिए तो असत्य का खंडन अपने आप होता चला जायेगा। क्या जरूरत है दूसरों का बिना मतलब खण्डन करते रहने की।

हमारे जीवन का आचरण बोलना चाहिए न कि हमारी वाणी। वाणी से बोलने की जरूरत है लेकिन जीवन का आचरण न बोले, त्याग-तप, विद्या ऐसा कुछ न हो जीवन में और खाली खण्डन करते चले गये तो किसी महत्त्व का नहीं है बल्कि दूसरे लोग चिढ़ जायेंगे। इसलिए सत्य को समझें, उसका आचरण करें और जैसा समझते हैं दूसरों के सामने मधुर ढंग से प्रस्तुत करें। हठ न करें कि दूसरा मेरी बात माने ही। जहां हठ होता है गड़बड़ी वहीं होती है। चाहे व्यवहार के क्षेत्र में हो चाहे परमार्थ के क्षेत्र में।

व्यवहार के क्षेत्र में भी देखें। घर का कोई सदस्य माता, पिता, पत्नी, पति, भाई, सास, बहू हठ कर ले कि मेरी ही बात माननी चाहिए, मेरी ही बात चलनी चाहिए, मेरे ही अनुसार घर के लोगों को करना चाहिए तो किसी के मन में संतोष नहीं होगा।

मर्यादा-संकोचवश भले कोई कुछ न कहे, लेकिन भीतर तो अश्रद्धा होगी ही, भीतर तो दरार पड़ेगी ही। माता-पिता श्रद्धेय हैं, पूज्य एवं आदरणीय हैं। इसका मतलब यह नहीं कि माता-पिता बेटे से हर बात को हठपूर्वक मनवाये कि मेरी बात माननी पड़ेगी। संकोचवश लड़का आपसे कुछ नहीं कहेगा लेकिन उसकी श्रद्धा कम होगी और दरार पड़ेगी। यदि आप बार-बार हठ करेंगे तो कहेगा पिता जी, आप अलग रहिये और मैं अलग रहूंगा।

आज घर-घर में जो टुटन एवं दरार है उसका कारण क्या है? हठ, स्वार्थ, अहंकार और भोगवादी दृष्टि। इनके कारण ही परस्पर में कलह है और इसी हठ, भोगवादी दृष्टि और अहंकार के कारण ही सम्प्रदायों में, मत-मजहबों में कटाकटी है। हर सम्प्रदाय वाला अपने-अपने अहंकार को गला दे। कोई यह न माने कि ईश्वर की सिधार्थ में केवल हमारा मजहब, हमारा सम्प्रदाय है,

बाकी सब नरक के रास्ते हैं। साम्प्रदायिकता का मूल कारण यही है।

सत्य किसी मत-मजहब की चीज नहीं है, सत्य तो आदमी के दिल की चीज है। मौलिकता में अंतर नहीं है। हम मौलिकता को समझने का प्रयास नहीं करते हैं। बाहरी बातों में रुक जाते हैं। हिन्दू मंदिर में जायेगा, मस्जिद में नहीं जायेगा। मुसलमान मस्जिद में जायेगा, मंदिर में नहीं जायेगा। ईसाई न मंदिर में जायेगा न मस्जिद में जायेगा वह गिरजा में जायेगा। सिक्ख अपने गुरुद्वारा में जायेगा। बौद्ध-जैन अपने-अपने मंदिर में जायेंगे। कबीरपंथी कहलाने वाले अपने मठ और आश्रम में जायेंगे।

हिन्दू राम, ॐ, गायत्री का जप करेंगे, मुसलमान अल्लाहो अकबर कहेंगे, ईसाई कुछ और कहेंगे, जैन “ॐ नमो अरिहंताणं” कहेंगे। बौद्ध “बुद्धं शरणं गच्छामि” कहेंगे, कबीरपंथी सतनाम कहेंगे। इन सबमें अंतर है। किंतु जीवन में जो सबको आवश्यक है मन, वाणी, कर्मों को निर्मल करना, इसमें किसके लिए अंतर है? हमारे दुख का मूल कारण हमारे मन की मलिनता है और उसे हम दूर नहीं करना चाहते। जिन्दगी बीत जाती है पाठ करते, पूजा करते, सत्संग करते, गुरुवाणी श्रवण करते, गुरु की सेवा करते किंतु मन को साफ रखना चाहिए इस तरफ ध्यान ही नहीं जाता है और शिकायत करते हैं कि क्या करें इतने दिन बीत गये पूजा-पाठ करते, मंदिर जाते, भगवान की प्रार्थना एवं सत्संग करते, गुरु जी की सेवा करते लेकिन दुख दूर नहीं होता। सब तो बाहर-बाहर चल रहा है, यांत्रिक रूप से सब कर रहे हैं तो दुख दूर कैसे होगा! कभी भीतर झांकने का एवं मन को निर्मल बनाने का प्रयास कहां करते हैं? जबकि सभी जगह प्रकारांतर से मन की निर्मलता पर ही जोर दिया गया है।

हदीस में मोहम्मद साहेब का एक वचन है—“जो दुनिया से उदास रहता है और कम बोलता है उसके पास बैठना वहां से तुमको आध्यात्मिक रोशनी मिलेगी।” दुनिया से उदास रहना और कम बोलना मन की निर्मलता के लिए ही है। कहा जाता है महर्षि वेदव्यास से किसी ने पूछा कि मैं ईश्वर की पूजा करना चाहता हूं। ईश्वर की सच्ची पूजा क्या है? वे सोच में पड़ गये कि

क्या बताऊं? किसको कह दूँ कि ईश्वर की सच्ची पूजा क्या है और जो सबके लिए हो। महर्षि वेदव्यास ने बहुत सोच-विचार कर कहा—

रागादेतं हृदयं वाकदुष्टानृतादभिः ।  
हिंसादिरहितकायाश्च ऐतद् ईश्वर पूजनम् ॥

राग-द्वेष से हृदय रहित हो; गाली, निंदा और झूठ से वाणी रहित हो और चोरी, हिंसा, व्यभिचार से शरीर रहित हो, यही ईश्वर की पूजा है। तात्पर्य है मन, वाणी और कर्मों की निर्मलता ही ईश्वर की पूजा है।

यह किसके लिए है? मन, वाणी और कर्मों की निर्मलता यह तो स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुसलमान मानवमात्र के लिए जरूरी है और यही वास्तविकता है। जो अपने मन, वाणी और कर्मों को निर्मल करने की साधना में लगा होगा वह कभी साम्प्रदायिक एवं मजहबी भावना से ग्रस्त नहीं होगा। कभी यह नहीं कहेगा कि केवल मैं ही सच्चाई को समझता हूँ, दूसरे लोग सब भूल-भ्रम में हैं।

इसलिए मूल बात जीवन का सुधार है। हम कहीं भी जायें हमारे साथ मन है, हमारा जीवन है। जीवन को सुख-शांति-प्रसन्नतापूर्वक जीना यही हर आदमी के मन की मांग है। अतः हम जीवन को सही ढंग से जीयें। इसके बाद आपको जैसी श्रद्धा हो, जैसा विश्वास हो उस ढंग से नाम जपें, कथा करें, कीर्तन करें, पाठ करें, मंदिर जायें, मस्जिद जायें वह आपके ऊपर निर्भर है। आप जाइये या मत जाइये इसमें आपकी भावना है।

यह भी है कि किसी भी उपासना पद्धति, पूजा-पाठ, कथा-कीर्तन, नमाज-प्रार्थना आदि करने से मन में सात्त्विक भावना आती है, मन एकाग्र होता है, अपने इष्ट की याद होती है, श्रद्धा बढ़ती है, सांसारिक खुराफात से मन बचा रहता है। यह बहुत अच्छा है। पूजा-पाठ न करते, सन्ध्या-तर्पण न करते, नमाज न पढ़ते तो बैठकर गप्प मारते, प्रपंच वार्ता करते। उससे तो अच्छा है कि कुछ पूजा-पाठ कर रहे हैं, नाम-जप रहे हैं सात्त्विक भावना तो मन में आ रही है। इसलिए यह सब करें लेकिन इतने में रुकें न, आगे बढ़ें। यह तो जैसे बच्चों को पढ़ाया जाता है 'क' माने कबूतर, 'ख' माने खरगोश इसी ढंग का है। लेकिन कब तक आप-हम बच्चे बने रहेंगे? जिन्दगी भर 'क' माने कबूतर थोड़े पढ़ते-पढ़ाते रहेंगे?

यह तो शुरुआत है। इनकी आवश्यकता है क्योंकि दुनिया में सभी लोग एक मानसिकता के नहीं होते। कहीं भी किसी भी परम्परा में सब के सब एकदम आध्यात्मिक ऊंचाई तक पहुंच जाते हैं, यह गलत बात है। हर परम्परा में अच्छे साधक हैं। कोई परम्परा, कोई मत-मजहब इससे खाली नहीं है। हर परम्परा में पहले अच्छे संत हुए हैं, आज हैं और आगे होंगे ही। और हर परम्परा में सामान्य लोग हैं। जो सामान्य लोग हैं उनकी ही संख्या अधिकतम होती है। उनके संतोष के लिए कुछ धार्मिक पूजा-पाठ, नाम-जप, हवन का विधान पूर्वजों ने किया है। उनको एकदम गलत है ऐसा नहीं कह सकते।

लेकिन कब तक सामान्य ही बने रहेंगे। जितना समझते हैं उतना आगे तो बढ़ते जायें। आगे बढ़ने का अर्थ है जीवन का सुधार। सद्गुरु कबीर ने इसीलिए कहा है—*ना हरि भजसि न आदत छूटी।*

(बीजक, शब्द- )

आदमी न हरि का भजन करता है और न इसकी गलत आदतें छूटती हैं। सद्गुरु कबीर के ख्याल से गलत आदतों का त्याग वास्तविक हरि भजन है।

अतः जिस साधना से मन निर्मल हो वह काम करना चाहिए। प्रश्न उपनिषद् में अनेक जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उत्तर देते हुए महर्षि पिप्लाद कहते हैं—*“तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्वामनृतं न माया चेति।”* निर्मल ब्रह्मलोक उसके लिए है, जिसके मन में कुटिलता नहीं है, असत्य नहीं है और छल-कपट नहीं है। कुटिलता, असत्य और छल-कपट मन में न हो उसे ही निर्मल ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इस ब्रह्मलोक को आप आत्मलोक, सतलोक, गोलोक, शिवलोक, साकेतलोक कहें आपकी मर्जी। इसमें उलझने की जरूरत नहीं है। सभी लोग एक ही शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे। इसलिए हठ नहीं करना है। शब्द तो आदमी समय-समय पर बनाता है और लड़ाई शब्दों को लेकर ही करते हैं। सारी धार्मिक लड़ाइयां शब्दों को लेकर हैं। तर्क इबादत को लेकर हैं। मूल बात को लोग भूल जाते हैं। इसलिए जीवन में जो दोष हैं, मलिनताएं हैं इनको दूर करना है। एक प्रसिद्ध भजन में बड़े सुन्दर ढंग से बता दिया गया है कि वास्तविक भजन क्या है—

पारख प्रकाश : जुलाई

मन की तरंग मार लो, बस हो गया भजन।

आदत बुरी सुधार लो, बस हो गया भजन

इसको किस मत की बात कहेंगे? यह तो मानव मात्र के लिए है। मन की चंचलता को दूर कर दें, आदतों का सुधार कर लें और आत्मज्ञान प्राप्त कर लें फिर एक भी महापुरुष का नाम न लें, कोई पूजा-पाठ, कर्मकांड न करें तो भी कल्याण है।

जो मूल बात है वह सबके लिए एक बराबर है उसमें अन्तर नहीं है। यदि वह हम करने लग जायें तो हमारा जीवन ही नहीं संसार स्वर्ग बन जाये। मरने के बाद सब स्वर्ग की कामना करते हैं, लेकिन जीते जी मन नरक में डूबा हुआ है तो मरने के बाद स्वर्ग कैसे मिलेगा? अतः मरने के बाद नहीं, जीते जी स्वर्ग का अनुभव करना होगा और वह तब होगा जब मन की खुराफात दूर होगी। स्वर्ग का अर्थ है—स्व=खुद, ग=गमन, लौट आना अर्थात् अपने में लौटना स्वर्ग है। प्रकृति की ओर से लौटकर आत्माभिमुख होना, आत्मस्थित होना—यही स्वर्ग है और बैकुण्ठ का अर्थ है विकुण्ठ—कुण्ठा रहित हो जाना, कम्प्लेक्स फ्री हो जाना। ग्रंथि मुक्त हो जाना। यह बहुत सरल है यदि हम करना चाहें तब। और न करना चाहें तो साधारण-सी बात कठिन लगती है।

स्वर्ग और बैकुण्ठ मरने के बाद नहीं, आज वर्तमान में चरितार्थ हो सकता है। कबीर साहेब ने कहा है—“संतो जीयत ही करु आशा। मुये मुक्ति गुरु कहें स्वारथी झूठा दे विश्वासा।” साहेब कहते हैं जीते जी आशा करो। जो लोग यह कहते हैं कि मरने के बाद तुम्हें स्वर्ग मिलेगा ऐसे गुरु झूठे हैं, ऐसे गुरुओं के चक्कर में न पड़ना। साहेब ने और कहा है—जियत न तरेउ मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै।” (बीजक, शब्द- ) जो जीते जी मुक्त नहीं हुआ वह मरने पर क्या तरेगा? इसलिए जीते जी मुक्त होना है, जीते जी मोक्ष को प्राप्त होना है। मोक्ष परोक्ष में नहीं है, लोक लोकांतर में नहीं है। आज उसका अनुभव होना चाहिए।

हम सरल ढंग से मोक्ष को समझें, शास्त्रीय व्याख्या में न जायें। मो+क्ष=मोक्ष। मो=मोह, क्ष=क्षय। मोह का क्षय हो जाना ही मोक्ष है। हम बंधन में क्यों पड़े हुए हैं? क्यों हम दुख का, पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं, चिन्तित-भयभीत क्यों बना हुआ है मन? इसलिए कि

हमारा मन विनशने वाली वस्तुओं के मोह में डूबा हुआ है। शरीर से लेकर जो कुछ हमें इन्द्रियों से प्रतीत होता है उनमें हमारा मन मोहग्रस्त हो गया है।

शरीर बदलने वाला है और बदलने वाला ही नहीं, छूटने वाला है? दुनिया की चीजें बदलने वाली एवं छूटने वाली हैं और इनमें मोह होगा तो भय होगा, चिंता होगी और पीड़ा होगी। इससे हम बच नहीं सकते और मोह का त्याग कर दें, निर्मोह हो जायें, अनासक्त हो जायें तो भय, पीड़ा, चिन्ता सब खत्म हो जायेंगे। और परमशांति का, मोक्ष का अनुभव हो जायेगा।

परिवार में जो लोग मिले हुए हैं उनके साथ प्रेम का व्यवहार करें, उनके लिए आपका जो कर्तव्य है उस कर्तव्य का पालन करें और जो बन सके उनकी सेवा करें। सेवा करना, प्रेम देना, कर्तव्य का पालन करना अलग है और मोह करना अलग है। लोग कर्तव्य का पालन एवं सेवा कम करते हैं और मोह ज्यादा बना लेते हैं इसलिए पीड़ा होती है। सेवा भी करें लेकिन निर्मोह-निष्काम रहें। लड़का पैदा हो गया तो उसका पालन-पोषण करें, पढ़ायें-लिखायें, योग्य बनायें। आपका जो कर्तव्य है उसे करें लेकिन लड़का मेरी सेवा करेगा यह कामना आयेगी बस दुख शुरू हो जायेगा। कामना न करें। लड़का का क्या कर्तव्य है वह जाने। लड़के के कर्तव्य को आप न देखिये, लड़का देखेगा अपना कर्तव्य। आप अपने कर्तव्य को और लड़का के अधिकार को देखिये। लड़का अपने कर्तव्य को और पिता के अधिकार को देखे। फिर गड़बड़ी नहीं होगी।

अतः निष्काम होकर सेवा करें, सबको प्रेम दें, सुंदर व्यवहार करें, वस्तुओं का सदुपयोग करें लेकिन मोह कहीं न बनायें, निर्मोह होकर, अनासक्त होकर जीयें। इसी जीवन में मोक्ष का, कल्याण का अनुभव होगा। यह परोक्ष की बात नहीं है और न यह किसी मत-पंथ की बात है। यह सबके लिए है।

जो मूल बात है वह एक जैसी है, वहां कोई भेद नहीं है। जितनी भी धार्मिक पूजा-पद्धतियां हैं, उपासना हैं, कर्मकाण्ड हैं उनका उद्देश्य है आत्मज्ञान की प्राप्ति, मन की निर्मलता और प्राणि मात्र के साथ निर्वैरत्व की भावना रखकर सबके साथ यथायोग्य प्रेम-सेवा का व्यवहार और यही सभी धर्मों की शिक्षा का सार है।

—धर्मन्द्र दास

## परमार्थ पथ

### सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

तुम्हारे शुद्ध स्वरूप चेतन में न मन है, न तन है, न पांच विषय हैं और न संसार है। यह देह आज-कल में नष्ट हो जायेगी, फिर दुनिया तुम्हारे लिए गायब हो जायेगी। देखते-देखते जीवन की ईंट खिसकती जाती है। और एक दिन यह जीवन का महल बहराकर गिर जायेगा। जीवन की सार्थकता है मन का स्थिर हो जाना। यह सारा अहंकार-ममकार छोड़ने पर होता है।

\* \* \*

जीवन तो जल बुदबुदेवत क्षणिक है। मौलिक रूप में जीव का शरीर से संबंध ही नहीं है। संबंध वासना जनित है। वासना त्यागकर स्वस्वरूप में स्थित हो जाने वाले साधक के लिए पुनः देह नहीं है। आत्मा निष्प्रपंच है। एक दिन सबको शरीर छोड़ देना है। शरीर-रहित स्वरूपस्थिति ही दुख-विहीन स्थिति है। इस गंदे शरीर में पुनः न आना पड़े, ऐसा यत्न साधक को करना चाहिए। दृश्यमात्र का मोह बंधन है। इसको पूर्णतया काटकर ही मोक्ष सिद्ध होता है। देह धारण दुख-धारा में बहना है। मनुष्यों का संबंध उपद्रव पैदा करता है। सबसे पृथक होकर ही स्वरूपस्थिति होती है। दुर्जन से दूर रहे तथा सज्जनों में राग-द्वेष न करे, यही शांति का उपाय है। संसार द्वंद्वमय है। इसमें न उलझना हमारी समझदारी होगी।

\* \* \*

सद्गुरु कबीर ने कहा है—“एक बार ही परखिये, न वह बारंबार। बालू तौ ही किरकिरी, जो छाने सौ बार ” कुछ लोग ऐसे होते हैं कि वे दस वर्ष, बीस वर्ष तथा चालीस वर्ष के पूर्व जैसे रहे, वैसे आज भी हैं। उनको काग से हंस कौन बना पायेगा? अतएव दूसरों को बदलने की आशा करना अज्ञान है। हमें अपने को ही बदलना चाहिए। हमारे सोच का विषय क्षणिक होता है।

साधना यह है कि सोच का विषय स्थिर आत्मा हो, और फिर सारे सोच से ऊपर उठकर स्वयं में शांत हो। सोच हो ही नहीं। मन की वृत्तियां पूर्ण शांत हो जाने पर अविचल विश्राम मिलता है।

\* \* \*

तुम्हारे मन की प्रतिक्रिया का कारण तुम्हारा अहंकार है। बाहर तो ऐसे लोग मिलते रहेंगे जो तुम्हारा सत्कार करेंगे और तिरस्कार करेंगे। तुम अपने को किसी का स्वामी, मालिक तथा गुरु न मानो। तुम अपने को एक मुमुक्षु समझो और सब समय स्वयं को भव-बंधनों से छुड़ाने की साधना में लगे रहो। तुम्हारा मन सबसे निवृत्त होकर अपने आप में संतुष्ट रहे, इससे बड़ी तुम्हारी कोई उपलब्धि नहीं है। इसी में तुम्हारा कल्याण है और इसी में दूसरा भी कल्याण की प्रेरणा ले सकता है। तुम्हारा संबंध केवल तुमसे है। तुम अपने मन को हर क्षण उद्वेग-शून्य रखने की साधना में लगे रहो और इसी स्थिति को सब समय बनाये रखो।

\* \* \*

कुसंग में पड़कर कौन बिगड़ जायेगा, कौन सुसंग करके सुधर जायेगा, धन-जन का कितना लाभ हो जायेगा और कितनी हानि हो जायेगी; इन सब बातों के चक्कर में क्यों पड़ते हो? तुम सबके त्राता नहीं हो। सब मनुष्य अपनी-अपनी सूझ-बूझ के अनुसार अपने हानि-लाभ का निर्धारण करते हैं। शरीर से लेकर सारे दृश्य-प्रपंच से तुम्हारा तत्त्वतः संबंध ही नहीं है। तुम द्वैत में क्यों पड़ते हो? तुम तो अकेले हो, अद्वैत हो, असंग हो, केवल हो, बक्रा हो। तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं। फिर तुम किस बात को लेकर हर्ष-शोक में पड़ो? अपने केवल स्वरूप की याद रखो, उसी में निरंतर लीन रहने का अभ्यास करो और अचल होकर स्वरूप में ठहर जाओ।

\* \* \*

ज्ञान का तात्पर्य है संसार से उदासीन रहना। सांसारिकता में आकर्षित होना और दुखी होना, दोनों अज्ञान के लक्षण हैं। यदि ज्ञानी भी इन दोनों में उलझा है

तो उसका क्या महत्त्व रहा? ज्ञान का अर्थ ही है सांसारिकता में न उलझना, कहीं भी आकर्षित न होना, अपितु सब तरफ से उदासीन रहना और कहीं तथा कभी दुखी न होना। ज्ञानी वह है जिसे देह तथा संसार सब समय स्वप्नवत्, निस्सार तथा दुखपूर्ण दिखता हो। ज्ञानी सदैव आत्मा में रमता है, इसलिए वह अनात्म, जड़-दृश्य से उपरत रहता है। परम सुख का कोश आत्म-विश्राम है और यह समस्त जगत से पूर्ण उपरत हो जाने पर होता है। परमानंद आत्मसंतोष है जो सहज और सरल है।

\* \* \*

बीती बातों की याद न करना, आगे के लिए कल्पना न करना और वर्तमान से उपरत एवं उदास रहना शांति के साधन हैं। जहां तक बने, कम बोलना। जब बोलना तब निर्मानयुक्त मीठे वचन हों। शरीर निर्वाह में सादा, स्वल्प और निस्पृह भाव से बरताव करना। विवाद न करना, कलह-प्रेमी से दूर रहना और निरंतर आत्म-चिंतन या आत्मलीनता की दशा में रहना मोक्ष का पथ है। निकट और दूर के लोगों से अपने कल्याण के पक्ष में हस्ताक्षर करवाकर आज तक कोई अपना कल्याण नहीं कर सका है। बोधवान इसकी परवाह ही नहीं करता है कि मेरे लिए निकट और दूर वालों की क्या धारणा है; क्योंकि इससे अपने कल्याण कार्य में कोई संबंध ही नहीं है। हमें हर समय सब कुछ से अनासक्त रहना चाहिए।

\* \* \*

देह, मन और बुद्धि से दृश्यमान पंच विषय सारा संसार स्वप्नवत् लग रहा है। हमारे सामने प्राणी आते हैं, पदार्थ आते हैं और परिस्थितियां आती हैं; कुछ घटनाएं आती हैं और वे सब अगले क्षण शून्य हो जाती हैं। मेरा आनंद-भवन आत्मस्थिति एवं स्वरूपस्थिति है। यही पारखस्थिति है, ब्राह्मीस्थिति है, निर्वाण एवं मोक्ष है, बक्रा है, राम-निवास है, कैवल्य है। मन को निर्विकल्प करके अपने आप में हर क्षण डूबा रहना महा सुख है। स्वरूपस्थिति उच्चतम उपलब्धि है। इस झूठे संबंध में

अपने को न खोकर परम सत्यता असंबंध-असंगता में हर क्षण जीना चाहिए। जड़-दृश्य हमारा नहीं है।

\* \* \*

दूसरों द्वारा अपने ऊपर आये हुए आक्षेपों को निर्विकार-भाव से सहो। सब मनुष्य अहंकार और कामना के अधीन जल रहे हैं। इसलिए उनमें से किसी के द्वारा विष उबल सकता है जो तुम्हारे ऊपर भेजे जाने के लिए हो। तुम उसे निर्विकार-भाव से सह लो। तुम स्वयं दूसरों के लिए ऐसा न करो। जोश मिथ्या है, प्रतिक्रिया मिथ्या है। जो परमशांति चाहे, मोक्ष चाहे, वह पृथ्वी के समान प्रतिक्रिया-रहित रहकर सहनशील होकर रहे। यह प्राणी-पदार्थों का सारा संबंध आजकल में समाप्त हो जायेगा। अत्यंत धीर बनो। तुम संबंध में उत्तेजित होते हो और सारा संबंध क्षणिक है। तुम्हारी शांति में बाधक तुम्हारे विरोधी नहीं हैं; अपितु तुम्हारा अहंकार है। उसे पूर्णतया मार दो, बस मुक्त।

\* \* \*

तुम किस वस्तु पर अपना अधिकार जमाना चाहते हो? जब तुम्हारा अपना माना हुआ शरीर अपने वश में नहीं है। यह क्षण-क्षण बदलता जा रहा है और वृद्धता तथा व्याधियों का शिकार है, तब अन्य किस प्राणी पर अपना अधिकार चाहते हो, जबकि उसका मन स्वतंत्र है, बदलने वाला है। सारे पदार्थ क्षण-क्षण बदल रहे हैं। तुम्हारी वास्तविकता को तुम्हारे चारों तरफ रहने वाले लोग समझ जायें, यह भी कठिन है। वस्तुतः तुम्हें अपने मन को स्ववश करना चाहिए। जो तुम्हारे वश की बात है। मन ही पर अधिकार कर लेने पर परम आनंद और स्वतंत्रता है। जिसने मन, वाणी और कर्म से संसार छोड़ दिया, वह अपने को पा गया और वही सुखी है।

मन से विषयों का राग-आसक्ति का त्याग हो जाना—वैराग्य है; सभी स्थितियों में सम-शांत रहकर आत्मतृप्त रहना—ज्ञान है और जीवमात्र के प्रति सुखदायी व्यवहार करना—सच्ची भक्ति है

—सद्गुरु कबीर

पारख प्रकाश : जुलाई

# विचारों से उत्थान और पतन

लेखक—विवेकदास

मनुष्य विचारशील प्राणी है। अपनी विचारशीलता के नाते ही इसने विकास की चरम ऊंचाइयों को छुआ है और आज इस भूतल का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बना हुआ है। यदि मनुष्य में विचार की शक्ति न होती तो वह भी अन्य प्राणियों की तरह ही अविकसित और निरीह ही रह जाता। किन्तु विचार-शक्ति की वजह से आज मनुष्य भौतिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास की उत्कर्षता भी प्राप्त किया है। इसीलिए किसी विचारक ने बड़ा ही अच्छा कहा है—“मानव व्यक्तित्व विचार के अलावा कुछ भी नहीं है।”

मनुष्य के लिए सकारात्मक विचार उसके उत्थान में सहायक होते हैं और वह सब प्रकार का विकास करता है किन्तु जब विचारों में नकारात्मकता आ जाती है तो उसका हास होने लगता है। उसके विचारों में, क्रिया-कलापों में अस्थिरता आ जाती है। नकारात्मक विचारों में पड़कर आदमी हतोत्साहित होता है, शक्ति और सामर्थ्य होते हुए भी अपने को वह दीन-हीन मानने लगता है। वह अवसाद और तनाव से भरने लगता है। शारीरिक कमजोरी का शिकार होने लगता है। भूख-प्यास कम हो जाती है। यहां तक यदि मनुष्य नकारात्मक विचारों से अपने आप को अलग नहीं कर पाया तो उसकी मृत्यु तक हो जाती है और जीता भी है तो मुर्दे की तरह।

अब विचार करें कि नकारात्मक विचार आते कैसे हैं? किन कारणों से मनुष्य के अन्दर नकारात्मकता प्रवेश करती है—

माता-पिता या बड़ों के द्वारा जब बच्चों को बार-बार यह कहा जाता है कि तुम कुछ नहीं कर सकते, तुम नालायक हो, तुम किसी काम के नहीं हो, तुमसे कुछ नहीं हो सकता, यह तो तुम कर ही नहीं सकते, तो बच्चे के अन्दर नकारात्मक विचार पैदा होने लगते हैं। वह सोचने लगता है कि वास्तव में मैं यह नहीं कर सकता, मैं वह नहीं कर सकता। फिर वह जीवन भर

अपने आपको नकारात्मक विचारों से उबार नहीं पाता है।

माता-पिता या बड़ों द्वारा सब जिम्मेदारी स्वयं उठाना, बच्चों को उनके लायक काम भी न करने देना। कहना कि तुम छोटे हो यह मत करो, वह मत करो। यदि कुछ करने का प्रयास करें और यदि बिगड़ जाये तो उन्हें डांटना-डपटना, इससे भी बच्चों के मन में नकारात्मकता आ जाती है। आप देखेंगे कि जो माता-पिता या अभिभावक ज्यादा सशक्त होते हैं और बच्चों को मासूम बनाकर रखते हैं वे बच्चे नकारात्मकता के शिकार हो जाते हैं।

. किसी असफल और नकारात्मक विचार वाले व्यक्ति की बराबर संगत से भी व्यक्ति के अन्दर नकारात्मकता जन्म ले लेती है।

. किसी क्षेत्र में स्वयं की असफलता को सोच-सोचकर नकारात्मकता जन्म लेती है और मनुष्य अपने आप को अयोग्य मानकर हतोत्साहित होता है।

. किसी दूसरे की असफलता को देखकर भी नकारात्मक विचार जन्म लेने लगते हैं। वह व्यक्ति सफल नहीं हो सका तो मैं कैसे सफल हो सकता हूं। यदि एक व्यक्ति में नकारात्मक भावना पैदा होती है तो उससे उसका ही नुकसान होता है ऐसी बात नहीं है बल्कि उसके इर्द-गिर्द जितने लोग होते हैं, बहुत सारे लोग उस नकारात्मकता के प्रभाव में आ जाते हैं।

नकारात्मक विचार मानव चेतना को पंगु बनाकर रख देते हैं; और आदमी दिलो दिमाग से पीड़ित हो जाता है। उसकी विचारदृष्टि पर पर्दा पड़ जाता है। बात-बात में दोष निकालने की प्रवृत्ति हो जाती है। वह जहां कहीं भी देखता है तो दोष और गलत ही देखता है क्योंकि उसकी नकारात्मक दृष्टि अच्छाई देखने ही नहीं देती है।

नकारात्मकता में फंसे लोगों के अक्सर वाक्य होते हैं—

. यह मेरा काम नहीं है।

. यह हो नहीं सकता।

पारख प्रकाश : जुलाई



- . इसे बदला कैसे जा सकता है।
- . यह करना असंभव है।
- . यह उन्हें पसंद आयेगा ही नहीं।
- . आपका समय ठीक नहीं है।
- . सब लोग ऐसे ही हैं।
- . कोई सुधर नहीं सकता।
- . मुझे किसी पर भरोसा नहीं है।

### नकारात्मक विचारों से मुक्त होने के उपाय

. हमेशा सकारात्मक सोचें—सकारात्मक विचारों का प्रवाह शुरू होगा तो नकारात्मक विचारों का क्रम सहज ही कम होने लगेगा। मन का स्वभाव है एक समय में एक ही बात सोचना। यदि आप सकारात्मक सोचने लगेंगे तो मन स्वाभाविक ही नकारात्मक सोच से हट जायेगा।

राकफेलर अपने समय का सबसे अधिक धनी व्यक्ति था। उनके पास विपुल सम्पत्ति थी। साठ के दशक में उनकी प्रति सप्ताह आय बीस लाख डालर थी। अपनी नकारात्मक सोच की वजह से पचपन वर्ष की अवस्था में ही अशक्त और रुग्ण हो गये। उनकी भूख समाप्त हो गयी। एक रोटी पचा पाना भी मुश्किल हो गया। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया कि इनका बचना मुश्किल है। एक मनोचिकित्सक ने कहा, इनकी सोच परिवर्तन की आवश्यकता है। इनको प्राकृतिक जगहों में, धार्मिक स्थलों में ले जायें, जिससे इनकी सोच में परिवर्तन आये। उन्हें प्राकृतिक जगहों में, धार्मिक जगहों में ले जाया गया। धीरे-धीरे सकारात्मक विचारों का प्रादुर्भाव होने लगा और कुछ महीनों में नकारात्मकता से मुक्त होकर पूर्ण स्वस्थ हो गये। राकफेलर के जीवन में समान्य-सी घटना घटी और वे नकारात्मकता के शिकार हो गये। राकफेलर जहाज द्वारा विदेशों में सामान भेजते थे। उनकी बहुत बड़ी कम्पनी थी। जहाज भेजने के पहले जहाज और सामान का बीमा करा लिया जाता था जिससे यदि कुछ दुर्घटना हो जाये तो सरकार की तरफ से सहायता मिल सके, किन्तु बीमा की राशि बचाने के

लिए बिना बीमा किये ही जहाज रवाना कर दिया गया। जहाज रवाना होने के एक दिन बाद ही तार आया कि समुद्र में भयंकर तूफान आया है और जहाज के बचने की सम्भावना कम है। अब तो वह बहुत घबराया। मुनीम को डांटा और कहा—“जल्दी से जाकर अधिक डालर देकर बीमा कराओ।” वह गया और डबल रकम देकर बीमा कराया। लेकिन कुछ समय बाद ही फिर से तार आया कि तूफान छट गया है और जहाज अपने गन्तव्य की ओर बिना किसी खतरा के सुरक्षित रवाना हो चुका है। वह फिर हड़बड़ाया। यह क्या, हम थोड़े में घबराकर अधिक डालर देकर बीमा कराये। व्यर्थ में ही इतने डालर बर्बाद कर दिये। कितने परिश्रम से धन आता है। इसी को सोचते-सोचते उनके अन्दर नकारात्मकता आने लगी और उनकी स्थिति बिगड़ गयी। यदि एक क्या वैसे-वैसे दस जहाज भी डूब जाते तो भी उनको खास फर्क नहीं पड़ता, किन्तु गलत सोच ने उनको रुग्ण बना दिया।

सकारात्मक सोच पर एक दूसरा उदाहरण देखिए—

एक नवविवाहित दम्पती ने अपने नये घर में प्रवेश किया। जब पति काम पर चला जाता था तब पत्नी अपना समय गुजारने के लिए खिड़की से बाहर झांका करती थी। जब वह अपने पड़ोसी की बालकनी में टंगे कपड़ों को देखती तो उदास हो जाता करती थी क्योंकि वे कपड़े बड़े गंदे जैसे दिखते थे। जब उसका पति घर आता तो रोज चर्चा करती कि पड़ोसिन को किसी अच्छे डिटर्जेंट की जरूरत है और साथ-साथ कपड़ों की धुलाई के लिए कड़ी मेहनत की जरूरत है। पति पत्नी की बात रोज धैर्यपूर्वक सुनता था। रोजमर्रा की यह कहानी एक महीने तक चलती रही। उसका पति सकारात्मक विचार वाला था इसलिए विचलित हुए बिना उसकी बात सुनता रहा। एक दिन अचानक एक अजीब घटना घट गयी। जब पति आफिस से घर लौटा तो उसकी पत्नी की आंखों में चमक थी। उसने कहा—जरा देखो तो, कितना बड़ा परिवर्तन है। मुझे खुशी है कि किसी ने उसे कपड़ा धोने का तरीका सिखा दिया। पति ने जवाब दिया—

पारख प्रकाश : जुलाई

प्रिये, हमारी पड़ोसन के कपड़े धोने के अंदाज में कोई बदलाव नहीं आया है। वह अब भी पहले जैसा है। लेकिन हमारे नजरिये में एकमात्र परिवर्तन इसलिए आया क्योंकि आज मैंने खिड़की के शीशे खूब रगड़कर साफ किये। उनमें धूल जम गयी थी और उन्हीं से तुम उन कपड़ों को देखती थी। लेकिन अब खिड़की साफ हो गयी है और तुम कपड़ों की असलियत देख सकती हो। पत्नी की आंखें खुल गयीं और उसका दृष्टिकोण ही बदल गया।

एक विद्यार्थी कई बार फेल हुआ और हताश होकर यह मान बैठा कि मैं अब परीक्षा पास नहीं कर सकता। उसने आत्महत्या तक की सोच लिया। वह अपने कमरे में बैठा था तो देखता है एक चींटी चावल के दाने को लेकर दीवाल पर बने अपने बिल तक जाने के प्रयास में कई बार गिरती है। लेकिन अन्ततः चावल के दाने को लेकर अपने बिल में पहुंच ही जाती है। उस विद्यार्थी के मन में विचार कौंधा कि एक तुच्छ चींटी यदि अपने उद्देश्य में सफल हो सकती है तो मैं क्यों नहीं। वह अपने नकारात्मक विचार को उखाड़ फेंका और पुनः पढ़ाई करके अच्छे अंक लेकर परीक्षा पास किया।

इस प्रकार नकारात्मक विचारों की जगह सकारात्मक विचार करने से हमारे नजरिये में अन्तर आयेगा और हम नकारात्मक विचारों से मुक्त होकर सकारात्मक विचारों के मालिक हो सकेंगे।

. सकारात्मक सोच वाले आत्मविश्वासी लोगों की संगत करें—हमारी सोच को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक हैं हमारे मित्र मण्डल, हमारी संगति। हमारी संगति यदि नकारात्मक सोच रखने वाले लोगों के साथ है तो हम भी धीरे-धीरे वैसी सोच वाले हो जायेंगे। हमारे विचार भी उन जैसे ही हो जायेंगे। मित्रता में अद्भुत शक्ति है जो हमारे अन्दर आमूलचूल परिवर्तन ला देती है। अंगुलिमाल जैसा क्रूर हत्यारा व्यक्ति महात्मा बुद्ध की संगति पाकर अपनी गलत सोच, अपने गलत कर्म को छोड़कर भिक्षु हो जाता है। रत्नाकर डाकू सप्त

ऋषियों के प्रभाव में आकर ऋषि हो जाता है। नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद का पहले का नाम) तार्किक और प्रगतिशील विचारों वाले जो पहले रामकृष्ण परमहंस के देवी-देवताओं की हंसी उड़ाते थे आध्यात्मिकता से उनको कोई मतलब नहीं था वे इसको मजाक समझते थे। श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव से एक महान आध्यात्मिक पुरुष हो गये। महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन की हंसी उड़ाने वाले सरदार वल्लभ भाई पटेल गांधी जी के संसर्ग से एक महान नेता हो गये। गांधी जी ने उनके ऊपर महान दायित्व डालकर उनके व्यक्तित्व को संवारने का काम किया।

अतएव नकारात्मक विचार वाले लोगों के संग-साथ से बचें। जितना हो सके सकारात्मक विचार वाले लोगों का साथ करें, जिससे आपके विचार सकारात्मक हो सके और आपके सुन्दर व्यक्तित्व का निर्माण हो सके।

. आलस्य और निठल्लेपन से बाहर आयें—कहावत है “खाली दिमाग शैतान का घर होता है” निठल्ला और आलसी आदमी जल्दी ही नकारात्मक विचारों में उलझता है जबकि परिश्रमी और उद्यमशील व्यक्ति नकारात्मक विचारों को दिमाग से झटक कर बाहर कर देता है और अच्छे व्यक्तित्व का मालिक बन जाता है। जबकि आलसी और निठल्ला व्यक्ति अपने आपको और नीचे गिराता जाता है।

एक बहिन एक बार मेरे पास आयी और अपनी समस्या बताने लगी—साहेब! मेरा पति काम पर चला जाता है, बच्चे स्कूल चले जाते हैं, मैं घर का काम करने के पश्चात दिनभर खाली बैठी रहती हूँ और मेरे दिमाग में नकारात्मक विचार आने लगते हैं। उन्हें वापस आने में थोड़ा भी लेट हो जाता है तो मन में विचार आने लगते हैं कि कहीं कोई दुर्घटना न घट गयी हो। कहीं कुछ हलका बुखार या सरदी-खांसी ही क्यों न हो जाये, डर लगता है कि कोई भयंकर बीमारी तो नहीं हो जायेगी। इस प्रकार हमेशा नकारात्मक विचारों से मैं घिरी रहती हूँ। पहले तो कम विचार आते थे अब तो बहुत ज्यादा आने लगे हैं। और जब ऐसे विचार आने लगते हैं तो मैं

बहुत ही घबरा जाती हूँ, मुंह सूखने लगता है। उनको बताया गया कुछ काम करो, सद्ग्रंथों का, सकारात्मक विचार वाले ग्रंथों का अध्ययन किया करो इससे धीरे-धीरे नकारात्मक विचार कम होने लगेंगे। सकारात्मक विचारों को बल मिलेगा।

आजकल तो आधुनिक साधनों का युग है, कम्प्यूटर और मोबाइल का युग है। कम्प्यूटर नहीं तो मोबाइल अधिकतम लोगों के पास है और आदमी मोबाइल के जरिये पूरी दुनिया से जुड़ रहा है। ई-मेल, फेसबुक, वाट्सएप आदि के माध्यम से हर आदमी का नेटवर्क फैलता जा रहा है। इससे आदमी सकारात्मक बातों के साथ नकारात्मक बातें भी अपने दिलो-दिमाग में भर रहा है। सकारात्मक बातों का तो कम बल्कि नकारात्मक बातों का प्रभाव अधिक पड़ रहा है। यदि आदमी सजग और सावधान रहे तो अपने आप को सकारात्मक बना सकता है और अपना विकास कर सकता है, लेकिन देखने में यही आता है कि आदमी इससे फायदा तो कम ले पा रहा है अपना नुकसान अधिक कर रहा है। वैसे साधन गलत नहीं होते हैं हमारा नजरिया उसे गलत बनाता है। यदि हम अपने चिंतन पर अपना अधिकार रखें साथ ही अपनी इन्द्रियों पर संयम रखें तो हम इन साधनों से भी लाभ ले सकते हैं।

. सत्साहित्यों का अध्ययन करें—नकारात्मक विचारों से निजात पाने के लिए और सकारात्मक विचारों के स्वामी बनने के लिए सत्साहित्यों का समय-समय से अध्ययन करना चाहिए। इससे हमारे विचारों को बल मिलेगा और हमारे मन से नकारात्मकता दूर होती जायेगी। आजकल साहस और आत्मबल बढ़ाने वाले, सकारात्मक सोच विकसित करने वाले विपुल साहित्य सभी भाषाओं में उपलब्ध हैं, इनसे लाभ लिया जा सकता है।

एक सज्जन इतना नकारात्मकता से घिर गया था कि आत्महत्या करने का सोच रहा था लेकिन उसे सकारात्मक सोच को दिशा देने वाली एक पुस्तक मिल गयी और उसकी सोच की दिशा बदली और आज वह अच्छा है और सत्साहित्यों का प्रेमी है।

. हमेशा दूसरों के अन्दर सकारात्मक बीज ही बोयें—जैसा कि हम पूर्व में कह आये हैं कि माता-पिता या बड़ों के द्वारा जाने-अनजाने ऐसे शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है जिससे बच्चों के अन्दर नकारात्मक विचार जन्म लेने लगते हैं और वे अपने को तुच्छ एवं अयोग्य समझने लगते हैं और वे जीवन भर नकारात्मक विचारों से अपने को बचा नहीं पाते हैं। अतः सभी माता-पिता और अभिभावकों से निवेदन है कि ऐसे शब्दों का प्रयोग न करें जिससे बच्चों के अन्दर नकारात्मकता जन्म ले। यदि आपके द्वारा किसी के अन्दर नकारात्मकता पैदा होती है तो आप पापी हैं। अतएव जागरूकतापूर्वक शब्दों का इस्तेमाल करें। जैसे—

. यह तुम कभी नहीं कर सकते इसकी जगह प्रयास करो तो तुम यह जरूर कर सकते हो, कहें।

. बच्चा कोई गलती कर जाये तो भी उसे कोसे नहीं बल्कि साहस दें। कहां गलती हुई उसे समझाएं और साहस दें कि तुम यह सही ढंग से कर सकते हो।

. तुम नालायक हो की जगह तुम होशियार हो कहें।

. तुम कुछ नहीं कर सकते हो की जगह तुम सब कुछ कर सकते हो कहें।

इस प्रकार दूसरों के अन्दर साहस और आत्मविश्वास जगाकर उसे सच्चा मानव बनाकर आप भी एक महान समाज निर्माता बन सकेंगे।

ऐसे विचार जो हमारे व्यक्तित्व को नीचे गिराते हैं, हमारा नैतिक और चारित्रिक पतन करते हैं, मानसिक रूप से रुग्ण करते हैं नकारात्मक विचारों की श्रेणी में आयेंगे। और ऐसे विचार जो हमारे व्यक्तित्व को ऊंचा उठाने का काम करते हैं, नैतिक और चारित्रिक उत्थान करते हैं सकारात्मक विचारों की श्रेणी में आयेंगे। हमें खुद विचारकर समझना होगा कि किससे हमारा पतन और उत्थान है। हमें अपनी विचार शक्ति से ही विचार की परख करनी होगी और सकारात्मक विचार को अपने जीवन का अंश बनाना होगा जिससे हम आत्मिक संतोष हासिल कर पायेंगे।

पारख प्रकाश : जुलाई

## लाओत्ज़े क्या कहते हैं?

### . पूर्ण संत की रहनी

- . *Those who in ancient times were competent as Masters were one with the invisible forces of the hidden. They were deep so that one cannot know them. Because one cannot know them therefore one can only painfully describe their exterior.*
- . *Hesitating, like one who crosses a river in winter, cautious, like one who fears neighbours on all sides, reluctant, like guests, dissolving like ice that is melting, simple like unworked matter: broad they were, like the valley, impenetrable to the eye they were like the turbid.*
- . *Who can clear up the turbid, little by little, through stillness (as they did)? Who can create stillness, little by little, through duration (as they did)?*
- . *Whosoever guards this DAO does not desire abundance. For only because he has no abundance therefore can he be modest, avoid what is new and attain completion.*

### अनुवाद

- . पुराने समय में जो सामर्थ्यवान संत हुए, वे अदृष्ट शक्ति-स्रोत के रहस्य को जान सके थे। वे गहन गंभीर थे, अतः उन्हें कोई जान न पाया। चूंकि उन्हें कोई जान न पाया,

इसलिए, उनका ऊपरी व्यवहार ही मुश्किल से बताया जा सकता है।

- . हिचकते हुए, जैसे कोई शीत ऋतु में नदी पार करता हो, सावधान, जैसे कोई चारों ओर लोगों से घिरा हुआ भयभीत हो, संकोची, अतिथि की भांति, घुलनशील, गल रही बर्फ की भांति, साधारण, अनगढ़ वस्तु की तरह, विस्तीर्ण हृदय, घाटी के समान, नयनों के लिए अगोचर, मटमैले पानी की भांति।
- . मटमैलेपन को कौन दूर कर सका है? थोड़ा-थोड़ा करके, स्थिर होकर? (जैसे उन्होंने किया)। कौन स्थिर हुआ है? थोड़ा-थोड़ा करके, समय के साथ? (जैसे वे हुए)।
- . जो इस ताओ की सुरक्षा करता है, वह अधिक की कामना में नहीं पड़ता। चूंकि वह अधिक के फेर में नहीं पड़ता, अतः वह थोड़े में निर्वाह लेता है। नये से बचता है, और पूर्णता को उपलब्ध होता है।

**भावार्थ—** . पहले के समर्थ संत अव्यक्त-शक्ति के मूल को जान सके थे। वे अत्यंत गंभीर थे, इसलिए उन्हें कोई जान नहीं पाया। इसलिए उनके ऊपरी व्यवहार को ही कठिनता से बताया जा सकता है।

. सिकुड़ते हुए, जैसे कोई कठिन ठंडक में नदी पार करता हो। सतर्क, जैसे कोई इर्द-गिर्द के लोगों से घिरा हुआ भयभीत हो। सकुचाते हुए, अतिथि की भांति; घुलनशील, गल रही बर्फ की तरह; साधारण, अनगढ़ पदार्थ की तरह; विस्तीर्ण-हृदय, घाटी के समान; आंखों के लिए अदृश्य, मटमैले जल की भांति।

. जल के मटमैलापन को कौन दूर कर सका है? स्थिर होकर धीरे-धीरे। कौन स्थिर हुआ है? धीरे-धीरे समय के साथ।

. ताओ का पालन करनेवाला अधिक की इच्छा नहीं करता। वह थोड़े में निर्वाह लेता है। नये से बचता है और पूर्णता प्राप्त करता है।

भाष्य—ग्रंथकार कहते हैं, पुराने समय में जो सामर्थ्यवान संत हुए, वे अदृष्ट-शक्ति के स्रोत को जान सके थे। वे गहन गंभीर थे; अतः उन्हें कोई जान न पाया। चूंकि उन्हें कोई जान न पाया, इसलिए उनका ऊपरी व्यवहार ही मुश्किल से बताया जा सकता है।

तत्त्वदर्शी संत सब समय हुए हैं। वे अदृष्ट-शक्ति के मूल को समझते रहे। प्रकृति अदृश्य है। उसकी शक्ति का मूल है उसमें अनादि स्वतः निहित क्रिया और गुण-स्वभाव। उसी सूक्ष्म अदृश्य प्रकृति से स्थूल दृश्यमान कार्य-जगत निरंतर प्रकट होता है और पुनः अपने कारण में लीन होता है। दूसरी अदृश्य-शक्ति है चेतन पुरुष जो असंख्य हैं। उसका मूल ज्ञान है, जो 'स्व' के रूप में सबका ज्ञाता होकर विद्यमान है। ज्ञाता-चेतन ज्ञेय-जड़प्रकृति से अपने को छुड़ाकर 'स्व' में लीन हो जाये, यही उसका पुरुषार्थ है। ऐसे संत पहले हुए हैं, परंतु उनको बहुत कम लोग जान सके हैं। ग्रंथकार कहते हैं, उन्हें कोई जान न पाया। इसका लाक्षणिक अर्थ है कि उन्हें कम लोग जान पाये। आखिर इस ग्रंथ के लेखक तो उन्हें जाने ही। तभी वे लिखते हैं, वे गहन गंभीर थे। संसार में अधिक प्रसिद्ध होते हैं दिखावा करने वाले। अंतर्मुख संत, जो चमत्कारी धोखापट्टी से दूर हैं, उनको बहुत कम लोग समझ पाते हैं। उनका ऊपरी व्यवहार ही कठिनता से समझ मिलता है। उनके न देवी-देवता हैं, न भगवान हैं, न अवतार, न पैगंबर हैं, न आशीर्वाद द्वारा ऋद्धि-सिद्धि देने का झांसा है। वे आत्मज्ञानी हैं। वे आत्मशोधन करते हैं, आत्मलीनता का अभ्यास करते हैं और जगत की चमक-दमक से उदास रहते हैं।

वे संत कैसे होते हैं? हिचकते हुए, जैसे कोई शीत ऋतु में नदी पार करता हो। अत्यंत ठंडक हो

और उसी समय नदी के जल में प्रवेशकर उसे पार करना हो, तो मनुष्य बहुत झिझक के साथ उसमें प्रवेश करता है। इसी तरह अंतर्मुख संत संसार के किसी नये व्यवहार से झिझक रखते हैं। नित्य के व्यवहार में भी सम्हाल-सम्हालकर कदम रखते हैं।

सावधान, जैसे कोई चारों ओर लोगों से घिरा हुआ भयभीत हो। संत लाओत्जे की बात बड़ी गंभीर है। बीसवीं सदी के लखनऊ क्षेत्र के लाओत्जे संत श्री विशाल साहेब थे। इन पंक्तियों के लेखक को उनके चरणों के निकट समय-समय से रहने का अवसर वर्षों तक मिला है। उनकी भी यही भाषा थी और यही रहनी थी। उन्होंने कहा था कि जो मुझसे मिलकर लौटता है, मैं आशा नहीं करता कि यह मनुष्य पुनः इसी भाव से मिलेगा। शांति चाहने वाले सभी साधकों का यह अनुभव होता है कि आस-पास के लोगों में राग-द्वेष होने का अवसर आता है। अतएव विवेकवान सबसे डरकर चलता है। वह किसी को जानबूझकर नहीं दुखाता और दूसरों के अनुकूल-प्रतिकूल बात-व्यवहार से स्वयं नहीं दुखता। सद्गुरु कबीर ने साखी ग्रंथ में कहा है—

साधू ऐसा चाहिए, दुखै दुखावै नाहिं ।  
पान-फूल छेड़ै नहीं, रहै बगीचा माहिं

साधु को चाहिए कि वह दूसरों के किसी भी प्रकार के व्यवहार से दुखी और उत्तेजित न हो और स्वयं किसी को जानबूझकर न दुखावे। वह समाज और संसार रूपी बाग में रहे, परंतु किसी से छेड़खानी न करे।

संकोची अतिथि की भांति। ग्रंथकार कहते हैं कि वह संत अतिथि की तरह संकोच से रहता है। अतिथि उस संन्यासी को कहते हैं जो केवल एक रात किसी के घर ठहरता हो, या जो अचानक आया हो। अतिथि किसी के घर पहुंचा हो, तो वह घरवाले पर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा नहीं करता। वह तो वहां सकुचाते हुए संक्षिप्त आवश्यक वस्तुओं से निर्वाह लेकर उन्हें धन्यवाद देता है। विवेकवान जिस परिवार या समाज में नित्य रहते हैं, वहां भी अतिथि की तरह ही रहते हैं। वे निकट-से-निकट रहनेवाले अनन्य सेवक पर भी अपना अधिकार नहीं जमाते।

घुलनशील, गल रही बर्फ की भांति। जैसे गलती हुई बर्फ हो, वैसे संत या साधक घुलनशील होता है। वह अपने अहंकार, मनोविकार, कामनाओं और दोषों को विवेक तथा साधना से निरंतर गलाता है, क्षीण करता है। सच्चे साधक का लक्षण यही है कि अपने मन, वाणी और इंद्रियों के विकारों को साधना से निरंतर क्षीण करता जाये। इस साधना में शिथिलता न लाये, अपितु निरंतर तीव्रता लाये। हमारे मनोविकार ही हमारे लिए नरक बनते हैं। हमारा विरोधी हमें नरक नहीं दे सकता, अपितु हमारे दोष हमारे नरक हैं। साधक इसे निरंतर नष्ट करते हुए इसी जीवन में कृतार्थ हो जाता है।

**साधारण, अनगढ़ वस्तु की तरह।** कोई लकड़ी, पत्थर आदि गढ़ा-संवारा न गया हो, तो वह बेढंगा लगता है। इसी तरह दिखावा-रहित अंतर्मुख संत होता है। वह रजोगुणी मनुष्यों की दृष्टि में अव्यावहारिक लगता है। इसलिए ऐसे संतों से बहुत लोग लाभ नहीं ले पाते। लोगों को तो चमक-दमक और तड़क-भड़क पसंद है।

**विस्तीर्ण-हृदय, घाटी के समान।** दो पर्वतों के बीच जो खाली एवं शून्य जगह होती है, उसे घाटी कहते हैं। संत का हृदय घाटी की तरह अहंकार-कामना-शून्य होता है, इसलिए महान होता है। किंतु यह महानता संसार के लोग नहीं समझ पाते। साधारण मनुष्य मन को अहंता-ममता से भरना उपलब्धि मानते हैं, किंतु संत मन को खाली कर देना, अहंकार-ममकार छोड़कर मन को शून्य बना देना अपनी उपलब्धि मानते हैं। वासनाओं से शून्य हृदयवाला ही तो जीवन्मुक्त है।

**नयनों के लिए अगोचर, मटमैले पानी की भांति।** मटमैले पानी में कोई अपना प्रतिबिंब देखना चाहे तो नहीं देख सकता। अंतर्मुख संत रजोगुणी मनुष्यों की दृष्टि में मटमैले पानी की तरह हैं जिनमें उसे अपनी आशा के प्रतिबिंब नहीं दिखते। रजोगुणी मनुष्य को उदासीन संत निरर्थक लगते हैं।

**मटमैलेपन को कौन दूर कर सका है? थोड़ा-थोड़ा करके स्थिर होकर (जैसा उन्होंने किया)।**

पानी मटमैला है, तो इस मटमैलेपन को वही दूर कर सकता है जो धैर्य रखकर मिट्टी के अंश को नीचे तल में बैठ जाने दे। ऐसा ही पुराने संतों ने किया है। साधक अपने मन में नयी गंदगी न डाले और पहले की रही हुई गंदगी के प्रति उपेक्षा कर दे, तो धीरे-धीरे मन निर्मल हो जायेगा। साधना में बिना रुके तथा बिना लौटे जो निरंतर आगे बढ़ता रहता है, उसका मन शुद्ध होना पक्का है। रुकना है साधना शिथिल कर देना या छोड़ देना और लौटना है कुसंग का सेवन करने लगना। इन दोनों दोषों से बचकर निरंतर साधना में लगे रहने वाले का हृदय शुद्ध होकर उसे अपना अंतिम लक्ष्य परम शांति पाना पक्का है।

**कौन स्थिर हुआ है? थोड़ा-थोड़ा करके समय के साथ (जैसे वे हुए)।** शांति वही पाता है जो थोड़ा-थोड़ा करके अपने मन की लालसाओं-कामनाओं को त्यागते हुए स्वरूपस्थिति का अभ्यास करता है। पहले के लोग भी इसी प्रकार जीवन के लक्ष्य को पाये हैं। संत कबीर साहेब कहते हैं—

*धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।  
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय*

जो इस 'ताओ' की सुरक्षा करता है, वह अधिक की कामना में नहीं पड़ता। चूंकि वह अधिक के फेर में नहीं पड़ता, अतः वह थोड़े में निर्वाह लेता है। ताओ जड़-जगत में व्याप्त है, समस्त सृष्टि में व्याप्त है और हमारे मन और जीवन में व्याप्त है। हर वस्तु का अपना धर्म-स्वभाव-नियम ताओ है। जो अपने मन और जीवन के ताओ को, धर्म को, नियम को समझता है और उसे सुरक्षित रखता है, अर्थात् उसका पूर्ण पालन करता है, वह अधिक की कामना नहीं करता। क्योंकि वह समझता है कि अधिक की कामना करना ताओ के विरुद्ध है, जीवन की शांति के नियम के विरुद्ध है। अधिक की कामना करने वाला शांति नहीं पा सकता। इसलिए ताओ का अनुगामी, जीवन की शांति के नियम को समझने वाला मनुष्य अपने जीवन का निर्वाह सादी और स्वल्प वस्तुओं

से लेता है। संत कबीर कहते हैं—

रूखा सूखा खाय के, ठंडा पानी पीव।

देखि परायी चूपड़ी, मत ललचावे जीव

नये से बचता है और पूर्णता को प्राप्त होता है। अंतर्मुख संत नये-नये प्राणी-पदार्थों, नयी प्रवृत्तियों से अपने को बचाकर निवृत्ति-परायण रहता है। अनेक महात्मा नये-नये मठों की स्थापना करते हुए अपने मूल-स्थान की शाखाएं बढ़ाते जाते हैं; और उन्हीं में उलझकर आत्मशांति खो देते हैं। प्रतिभावान अच्छे संतों को लोग मठ-मंदिर, जमीन, धन अर्पित करते हैं, और वे इन्हें स्वीकारते-स्वीकारते दुनिया में उलझ जाते हैं। उनकी व्यवस्था में तो उलझते ही हैं, उनके मुकदमों की फाइलें लंबी होती जाती हैं। फिर अंतर्मुखता का काम छूटकर वे घोर बहिर्मुखी हो जाते हैं। जिस धर्म-प्रचार

के लिए उन्होंने यह सब किया, वह लुप्त होकर वे दुनियादारी से भी गये-बीते हो जाते हैं।

लोक-भाषा में कहा जाने वाला ऋद्धि-सिद्धि में फंसकर परमात्मा को भूल जाने का अर्थ यही है। लौकिक माया ऋद्धि-सिद्धि है और आत्मा परमात्मा है। अनादि काल से अनात्म जड़ पदार्थों में मोह करने की आदत है। साधक यदि पुनः दुनिया की झूठी चमक-दमक में फंस गया तो उसे स्थिर शांति एवं स्वरूपस्थिति-धाम नहीं मिलेगा। माया के पसारा में मोह करना, उसमें हर्ष मानना घोर अविवेक है।

इसलिए ताओ को समझने वाले, जीवन रहस्य तथा नियम को समझने वाले सिमितकर रहते हैं। वे नये-नये के प्रलोभन में नहीं पड़ते। इसलिए वे आत्मसंतुष्ट होकर कृतकृत्य हो जाते हैं।

## भिखारी कौन?

लेखक—सौम्येन्द्र दास

जी हाँ, पूरे विरक्ति जगत में एक ही कुल है भिक्षु।

भूख लगी तब माँगिबो, भीख अन्न एक बार

—सद्गुरु पूरण साहेब

भिक्षु या साधु-संन्यासी भीख मांगकर खाते हैं और संतोष धारण करते हैं। और अपने राम में रमते हैं।

कमल पत्र हैं संतजन, रहे जगत के माहिं।

बालक केरी धाय जो, आपन जानत नाहिं

(कबीर साहेब)

संसार में रहकर भी सांसारिकता के ऊपर, संयमित व्यवहार धाय की तरह। वे किसी के पचड़े में नहीं पड़ते, किसी के मुहताज नहीं होते, और न ही किसी राजा के दरबार में किसी नट या भाट की तरह राजा को खुश करने में लगे रहते हैं।

डायोजनिज जैसे संत तन में केवल लंगोटी पहने पुल (बड़ा पाइप) के नीचे रह लेते थे। सूखी रोटी और

मसूर की दाल खा लेते थे। राजदरबार में रहने वाले मंत्री बीच-बीच में संत डायोजनिज के दर्शनार्थ आते और कहते कि संतजी! अगर राजा के दरबार में रहते तो सूखी रोटी और मसूर की दाल नहीं खानी पड़ती। संत भी मीठे शब्दों में उत्तर देते—मंत्री जी, अगर सूखी रोटी और मसूर की दाल खाने की आदत बना लेते तो किसी राजा की चाकरी नहीं करनी पड़ती।

जिन्हें हम अकिंचन कहते हैं उन्होंने तो अपनी नाव को संसार-सागर से पार लगा लिया। सद्गुरु कबीर के शब्दों में देखें—

जेकर हाथ पाँव कछु नाहीं, धरन लागि तेहि सोहरि हो।

(बीजक, कहरा—

जिसके हाथ-पाँव नहीं हैं उसने अपनी नाव की रस्सी को पकड़कर नाव को पार लगा लिया। आप तर्क कर सकते हैं कैसे पार लगा लेगा बिना हाथ-पाँव के? आपका तर्क सही है और इसी तर्क पर ही तो कहते हैं

पारख प्रकाश : जुलाई

कि संत अकिंचन हैं, गरीब हैं, भिखारी हैं, असमर्थ हैं, निर्बल हैं। आप अपने धन और बल से तुलना करते हैं।

अर्जुन ने निहत्थे श्री कृष्ण को चुना और दुर्योधन ने नारायणी सेना को। अर्जुन को श्री कृष्ण पर पूर्ण विश्वास है और दुर्योधन को सेना पर। वह सेना पाकर खुश है।

महाभारत युद्ध के पहले दिन अर्जुन रणभूमि में गुरु द्रोणाचार्य को प्रणाम करने गये तब उन्होंने उसे विजयश्री का आशीर्वाद दिया। अर्जुन ने कहा—गुरुदेव! आप पर कैसे विजय कर पायेंगे? द्रोण ने कहा—जिधर कृष्ण हैं उधर ही विजय है और तुम्हारे पक्ष में श्री कृष्ण हैं। अर्जुन ने कहा है—लेकिन वे तो निहत्थे हैं। तब द्रोण ने जो कहा है वह बहुत मार्मिक है—कृष्ण निहत्थे हैं यह तुम्हारा तर्क नहीं है पुत्र, यह तो दुर्योधन का तर्क है और इसीलिए तुमने नारायणी सेना नहीं, निहत्थे कृष्ण को चुना है।

आपका भी तर्क दुर्योधन का तर्क है। संत अकिंचन नहीं हैं। आपको उनकी पूंजी, उनकी शक्ति, उनकी संपन्नता का पता नहीं है। संत तो अपने पवित्र संस्कारों की पूंजी के बल पर आत्मशक्ति का संचय कर लिये और अपनी जीवन नौका को शांति एवं मोक्ष के घाट लगा लिये। सच्ची संपन्नता मन की पवित्रता होती है, पवित्र मन वाला ही आत्म साक्षात्कार करता है।

श्री राम जी कहते हैं—

*निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा*

निर्मल मन वाले ही मुझे अच्छे लगते हैं और वही मुझे पाते हैं, छल-कपट वाले नहीं। बड़े-बड़े धनपतियों का मन प्रसन्न नहीं रहता। अमीर हो या गरीब, साधु हो या गृहस्थ प्रसन्न उसका मन रहता है जिसने छल और कपट का त्याग कर दिया है। यही कारण है कि संतों में सम्राट नजर आते हैं और सम्राट में भिखारी।

एक राजा ने एक संत को देखा कि मांगकर खा लेते हैं, पेड़ के नीचे रह लेते हैं। बिलकुल अकिंचन हैं और मेरे पास क्या नहीं है। चलो, पूछूँ कैसा बीतता है। राजा ने व्यंग्य करते हुए कहा—कहिये संत जी! रात कैसे बीतती है? राजा ने सोचा होगा दिन तो उपदेश देते गुजर जाती होगी। गुजरती नहीं होगी रात। गरीब आंखों में नींद कहां, कल की चिंता सताती होगी? राजा ने व्यंग्य

किया—रात कैसे बीतती है? संत ने उत्तर दिया—कुछ तुम्हारे जैसे और कुछ तुमसे अच्छी। राजा ने कहा—मतलब? संत ने कहा—जब तुम गाढ़ी नींद में चले जाते हो तो तुम्हें कुछ भी याद नहीं रहता, न खजाना, न राज्य, न हाथी-घोड़े न सैनिक, न शत्रु-मित्र, न पत्नी-बच्चे। मैं भी गाढ़ी नींद में चला जाता हूँ तो कुछ भी याद नहीं रहता। गाढ़ी नींद में हम दोनों बराबर हो जाते हैं इसलिए कहता हूँ कुछ तुम्हारे जैसे बीतती है और कुछ तुमसे अच्छी। तुम जब जाग रहे होते हो तब तुम्हें चिंता लगी रहती है राज परिवार को लेकर, दूसरे राजा के लिए षड्यंत्र रचते हो, और काम-क्रोध, लोभ-मोह में पड़े रहते हो, सुख-संतोष तो कहने मात्र का है किंतु मैं जब तक जागता रहता हूँ तो मनोविकारों को जीतने का प्रयास करता हूँ। मन भगवान के भजन में लगा रहता है। मन निर्मल, निर्भय, शांत, संतुष्ट रहता है, इस प्रकार तुमसे अच्छी कटती है। राजा सोचने को मजबूर हो गया।

हमारे पास क्या है, इसका महत्त्व नहीं है, महत्त्व है हमारा मन कैसा है। पवित्र मन ही सबसे बड़ा धन है और संतोष में सच्चा सुख है। जिसका मन पवित्र नहीं है उसको न दिन में चैन न रात में नींद, वह चाहे राजा ही क्यों न हो। राजा धृतराष्ट्र की नींद उड़ गई है चिंता में। महारानी गांधारी कहती है—महाराज, चिंता छोड़िये और सो जाइये। राजा ने कहा—नींद मेरी दासी नहीं है गांधारी, जिसे जब चाहूँ बुला लूँ और चली आये। विदुर से भी बाद में पूछा है। विदुर ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से उत्तर दिया है कि किसको-किसको नींद नहीं आती और आखिर में कहते हैं कि महाराज, उसको नींद नहीं आती जो अपने भाई-भतीजे की संपत्ति को छलपूर्वक हरण कर लिया हो।

आप भिक्षु का अर्थ क्या समझते हैं? भीख मांगने वाला। यही अर्थ भगवान बुद्ध के पिता ने भी किया था। जब बुद्ध भिक्षा मांग रहे थे अपने ही गृहनगर में तो उनके पिता शुद्धोधन ने देखा और कहा—सिद्धार्थ (पूर्व नाम लेकर)! हमारे कुल में भिक्षा नहीं मांगी जाती। हम क्षत्रिय कुल के हैं और क्षत्रिय किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते। पहला अहंकार कुल का होता है कि हम उच्च कुल के हैं। साधना और समर्पण में प्रथम बाधा, जिसे बुद्ध ने पहले ही मिटा दिया था और पुनः न जागे

पारख प्रकाश : जुलाई



इसलिए भिक्षु हो गया था। एक भिखारी की तरह अपने को विनम्रतापूर्वक झुका लेने वाला भिक्षु। कबीर साहेब ने अपने को दासन के दास कहा—

*कहहिं कबीर हम दासन के दास*

*कहहिं कबीर रामरस माते, जोलहा दास कबीरा हो।*

इतना झुकने वाला भिक्षु। इस साधना को उनके पिता क्या जानें? उनकी तो दुनिया दूसरी थी। केवल भिक्षुपात्र ही दिखाई दिया था। उन्होंने कहा—सिद्धार्थ, हमारे कुल में भिक्षा नहीं मांगी जाती।

बुद्ध ने कहा—हमारे कुल में भिक्षा मांगी जाती है।

अहंकार गिर गया, अहंता-ममता मिट गयी वह बुद्ध, वरना लंगोटी पहनकर भी बुद्ध। बुद्ध का अर्थ जागा हुआ। भिक्षु का अर्थ संयमित व संतोषी पुरुष।

बुद्ध होना, साधु होना, भिक्षु होना साधना की गहराई है। भिक्षुपात्र लेकर अपने को भिक्षु न मान लें। यह भिखारीपन काम न देगा। सारा अहंकार गलाना पड़ेगा। जिस तरह दाना अपने को मिट्टी में खोकर नया जीवन पाता है, बुंद अपने को मिटाकर विशाल सागर बन जाती है। अध्यात्म में बिना मिटे कुछ न होगा। भिक्षु होना आम बात नहीं है कि कोई भी जीवन में भिक्षु हो जाता है कि भिक्षु संघ में समर्पित हो जाता है।

कबीर साहेब ने कहा है—

*साधु होना चाहिए, पक्का हूँ के खेल।*

*कच्चा सरसों पेरी के, खरी भया नहीं तेल*

(बीजक)

मन में वैराग्य का पक्का निश्चय हो जाये और निश्चयतापूर्वक साधना भी कर ले तभी साधु-वेष धारण करना चाहिए। जीवन में साधु होना आम बात नहीं, खास बात है, खास काम है।

एक भगत से मिलना हुआ, जो साधु स्वभाव के हैं और व्यवसाय से शिक्षक थे। मैंने तबियत पूछी, उन्होंने कहा—ठीक है। मैंने कहा—सब ठीक चल रहा है? उन्होंने कहा—नहीं साहेब, बंदर आ गये हैं। आम फला हुआ है और बंदर उपाधि मचा रहे हैं। एक जाता है तो दूसरा आ जाता है। परेशान हूँ, सारा आम झाड़ देगा।

और यह आम बात नहीं है साहेब, आम वाले के लिए यह खास बात है। उनका इस लहजे में बताने से मुझे बड़ी हंसी आयी, क्योंकि वह जानता है इससे न आचार मिलेगा, न पका आम, तो खास बात तो है ही।

कच्चे मन की दशा में साधु बनने से कोई समाधान नहीं है। बनने में कितना समय लगता है। लंगोटी लगा लिये, चंदन-चोवा लगा लिये साधु बन गये। कबीर साहेब होने के लिए कहते हैं—साधु होना चाहिए। होना आंतरिक धरातल पर निर्भर होता है, स्वभाव से होता है, आमूल-चूल परिवर्तन। अब मन-इंद्रियों की धारा के विपरीत चलना होगा। अपने स्वभाव की तरफ। अब तक गंगा गंगोत्री से गिरकर समुद्र की तरफ बहती रही, अब मुड़ जाना होगा। गंगोत्री की तरफ बहना है, अपने मूल उद्गम की तरफ, अपनी आत्मा की तरफ। बड़ा मुश्किल है, यह चलना राह नाजुक है, लेकिन चलना होगा, वरना न भेष काम देगा न भिक्षा पात्र। धोखे में रह जायेंगे।

*न खुदा मिला न विशाले सनम, न इधर के रहे न उधर के।*

एक आदमी क्रोधी था। इतना क्रोधी कि क्रोध में आकर अपने बेटे को कुएं में ढकेल दिया था, उसी से पश्चाताप हुआ। गांव में कोई मुनि ठहरे थे। वह आदमी गया अपनी बात रखी—मुझे बड़ा पश्चाताप हो रहा है। मुनि ने कहा—पश्चाताप सच है तो छोड़ दो संसार। क्रोधी आदमी थे, छोड़ दिया। लेकिन ध्यान रखना, छोड़ा भी क्रोध में। गांव के लोगों ने समझाया—यह त्याग का मार्ग है। तुमने कभी न साधु संगत की है और न मन को साधा है, एकदम से छलांग मत लगाओ, आहिस्ता चलो। लेकिन वह तो हठी था। चला आया उसका नाम पड़ा मुनि शांतिनाथ। पीछे से नगर में आगमन हुआ। पुराने बचपन के मित्र पहचान लिये। उसने कहा—आपका नाम पूछ सकता हूँ। मुनि ने कहा—हां-हां, क्यों नहीं, अखबार नहीं पढ़ते हो, टी.वी. नहीं देखते हो। मुनि शांतिनाथ मेरा नाम है। वह आदमी समझ गया, बदला कुछ भी नहीं है। वह थोड़ी देर चुप रहा। उसने फिर पूछा कि महाराज, मैं भूल गया आपका नाम। मुनि डंडा उठाकर बोले—मेरा नाम मुनि शांतिनाथ

पारख प्रकाश : जुलाई

है, याद रखना। वह आदमी थोड़ी देर चुप रहा। फिर उसने पूछा और महाराज ही कहा था कि मुनि ने डंडा सिर पर जमा दिया और बोले—शांतिनाथ मेरा नाम है। उसने कहा—लेकिन महाराज, शांति कहीं पता नहीं चलती, अंदर तो ज्वाला धधक रही है।

ऊपर के आवरण बदल गये हैं भीतर तो वही है हठी, क्रोधी। केवल वस्त्र ओढ़ लेने से कोई परिवर्तन नहीं हो जाता। बाहर दिखावे का साधु हो जाता है। साधुता तो भीतर की भावदशा है। धीरे-धीरे मन को साधते-साधते सधती है। हर क्षण अपने मन की निगरानी करना, संसार के प्राणी-पदार्थों की वास्तविकता को समझना, एक-एक सीढ़ी पर कदम जमाते हुए बढ़ना, तब कहीं जाकर बंधन समझ में आता है। जब वैराग्य प्रबल हो जाता है तब बंधन छूटता जाता है। जहां ढील हुए बंधन फिर प्रबल हो जाता है, आसक्ति प्रबल हो जाती है। फिर वासनाओं की दुनिया बढ़ने लगती है, फिर वही राग-द्वेष, काम-क्रोध। साधु होकर भी गाली और डंडा से स्वागत करता है। कैसी दशा है—“दोनों दिन से गये पांड़े, हलुए हुए न माड़े” भिक्षाटन करते हुए भिक्षु भी भिक्षुकुल के नहीं हुए। जिसे फकीरी का शौक है, जो साधु दशा में जीवन पर्यंत समर्पित होकर, संसार की नश्वरता और अपनी अमरता को समझकर वैसा काम करता है तो वह भिक्षु है और उसका एक ही कुल है—भिक्षु। जी हां, भिक्षु कुल के हैं और जो नहीं करता वह भिखारी कुल के हैं। इसीलिए कहना पड़ा—भिखारी न कहना मुझे लोगो, भिखारी तो सारा जमाना है।

भिक्षु तो असली सम्राट होता है। दुनिया के लोग और सम्राट कहलाने वाले तो भिखारी हैं। आम भाषा में मांगने वाला भिखारी है। अगर आदमी किसी कारणवश लाचार है, आलसवश नहीं और सचमुच भूखा है तो भीख मांगना कोई बुरा नहीं और ऐसे भूखे को खिलाना बड़ा पुण्य का काम है। ऐसे लोगों की जरूर मदद होनी चाहिए, लेकिन देखा जाता है भीख मांगने वाले खा क्या रहे हैं गुटखा, तंबाकू, पान। पी क्या रहे हैं, बीड़ी, सिगरेट। क्या ये सचमुच पेट के भूखे हैं या दुर्व्यसन के। धार्मिक कार्यों के लिए चंदा मांगी जाती है। एक

तरफ पुण्य का काम हो रहा है और दूसरी तरफ उस पैसे का इस्तेमाल दुर्व्यसन में किया जा रहा है। धर्म के नाम पर अंधा न बनें। वहां दो, जहां पब्लिक की सेवा होती है, लाचार लोगों का इलाज होता है और संत-महात्माओं की सेवा होती है।

आदमी एक है भूख अनेक है। मात्र पेट की भूख नहीं है, धन की है, मन की है, मान-सम्मान की है। जीने की भूख है, ईर्ष्या-तृष्णा की भूख है और न जाने कितनी भूख लेकर आदमी जी रहा है। प्रतिष्ठा, प्रतिस्पर्धा और प्रदर्शन की भूख ने आदमी को भूखा मार डाला। यह भूख वह भूख है जो मरते दम तक नहीं मिटती है। आदमी जब इन भूखों को लेकर जीता है तो भिखारी बनकर जीता है और मरता है तो भूखा मरता है।

भिखारी न कहना मुझे लोगो, भिखारी तो सारा जमाना है। कौन है ऐसा, जो भिखमंगों के इस महाकुंभ में भिखारी न हो, चाहे वह गरीब हो या अमीर, सब अपने ऊपर एक-एक मालिक बैठा रखे हैं जिसके आगे समय-समय पर हाथ फैलाते रहते हैं।

कबीर साहेब कहते हैं—जिसकी चाहना मिट गई, चिंता मिट गई, मन विषयों से उपराम हो गया, वह असली सम्राट है, अपने आप का मालिक है। उसके ऊपर और कोई मालिक नहीं।

*चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह।*

*जिनको कछु न चाहिए, सोई शाहनशाह*

दुनिया में बड़े-बड़े विश्वविजेता हुए, जिनका खजाना अपार दौलत से भरा पड़ा था, वे भी एक दिन भिखारी होकर मर गये। मौत के सामने भिखारी लाचार हो जाते हैं।

*इकट्टे कर जहां के जर सभी मुल्कों के माली थे।*

*सिकंदर जब गया दुनिया से दोनों हाथ खाली थे*

इसीलिए कहता हूं भिखारी तो सारा जमाना है, क्योंकि मन में इच्छा, कामना, तृष्णा बनी हुई है, मन असंतोष-अतृप्ति की आग में जल रहा है। इसके विपरीत जिसका मन शांत, संतुष्ट, तृप्त और निष्काम है, वही सम्राट है।

पारख प्रकाश : जुलाई

## कसौटी

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

आदर सेवा प्रेम पुजापा, अन्यो से जो पाते हैं।  
सोचे स्वयं आप वैसा कुछ, अन्यो को दे पाते हैं

दुःख में या असहाय दशा में, आप चाहते हैं जैसा।  
क्या सेवा सहयोग अन्य का, करते हैं खुद भी वैसा

रे रेकार तुम आदि शब्द, जो हम को नहीं सुहाते हैं।  
क्या उन शब्दों को कहने से, खुद को सदा बचाते हैं

मेरी गलती पर जन क्यों न, क्षमा भाव को लाते हैं।  
अन्य से ऐसा होने पर क्या, आप उदार हो पाते हैं

बिन गुण के भी सदा चाहते, सभी हमारा गुण गाते।  
गुणवानों की स्वयं क्या, सच्ची प्रशंसा कर पाते

सुई नोक सा छिद्र पराये, पर नजरें गड़ जाती हैं।  
क्या अपने बिल के समान पर, दृष्टि कभी पड़ पाती है

निन्दा योग्य किन्तु कहते, जन निन्दा गीत क्यों गाते हैं।  
पर निन्दा का पाप स्वयं सिर, पर तो नहीं उठाते हैं

मुझ पर क्रोध करे न कोई, मेरा मनचाहा कर दें।  
आप का दिल क्या कभी उमगता, दूजे के दिल को भर दें

पीड़ित कोई करे न मुझको, यही भाव मन में लाते।  
क्या जीव-हत्या-पीड़ा से, निज को सदा बचा पाते

जिन क्रियाओं से पर को, अपवित्र तथा गन्दा कहते।  
निज को देखें उन बातों में, कितना पाक स्वयं रहते

अन्यों पर ही नहीं स्वयं पर भी कुछ ध्यान जो जायेगा।  
विविध कसौटी पर कस देखें, तभी समझ कुछ आयेगा

अनायास मुख से निकलेगा, कही कबीर की बात सही।  
जब अपने दिल में ढूँढ़ा तो, मुझ सा कोई बुरा नहीं

## जीवन का रूप सँवर जाये

रचयिता—श्रीमती मीना जैन

मानव जन्म मिला जो हमको  
व्यर्थ ही न गुजर जाये  
ऐसा प्रयत्न कर प्राणी  
जीवन का रूप सँवर जाये...

क्षमा से जीता जाये क्रोध  
मार्दव से जीतो मान को  
विनय भावना अपनाकर  
हृदय में आँको ज्ञान को  
प्रति क्षण आत्म का ध्यान धर  
दारुण दुःख भी टर जाये...

नियम संयम जो अपनाता  
पाता वैभव और समृद्धि  
साधना मार्ग पर बढ़ता  
होती आत्म बल में वृद्धि  
जहाँ प्रमाद तहाँ सुख नहीं  
उद्यम से निज रूप निखर जाये...

अपनी भूल स्वयं जानें  
आत्म निरीक्षण कर अपना  
अपनी स्थिति स्वयं पहचानें  
व्यवहार विश्लेषण कर अपना  
संतों की वाणी धर शीश  
जीवन अपना सुधर जाये...

अज्ञानी तो सोता भला  
ज्ञानी जागरण किया करे  
समेटकर बाहर से अपने को  
आत्मा में विचरण किया करे  
समता भाव को धारण कर  
भव सागर से पार उतर जाये...।

## धरती पर स्वर्ग

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा, श्री कबीर संस्थान, नवापारा-राजिम में दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—रामकेश्वर जी)

सज्जनो तथा देवियो! सद्गुरु की वाणी है—  
जिन जिन सम्मल ना कियो, अस पुर पाटन पाय।  
झालि परे दिन आथये, सम्मल कियो न जाय

वे कहते हैं ऐसा पुर और पाटन पाकर भी जिन-जिन ने सम्मल नहीं किया। दिन ढल जाने पर और संध्या हो जाने पर फिर सम्मल किया न जा सकेगा। इस साखी में “पुर”, “पाटन”, “सम्मल” और “झालि” आदि पुराने जमाने के शब्दों का प्रयोग करके साहेब बहुत महत्त्वपूर्ण बात बताना चाहते हैं। उनकी बात को समझना चाहिए।

‘पुर’ कहते हैं गांव को और ‘पाटन’ कहते हैं बाजार को। साहेब कहते हैं कि अगर कहीं लम्बी यात्रा पर जाना हो तो अच्छा गांव और अच्छा बाजार मिल जाये तो वहीं पर खाने-पीने की वस्तुएं खरीद लेनी चाहिए और जीवन-गुजर की चीजें रख लेनी चाहिए क्योंकि वहां से जब हम चल देंगे तो आगे रेगिस्तान मिल सकता है, जंगल मिल सकता है और बियांबां भी मिल सकता है तब वहां तो कुछ नहीं मिलेगा। फिर वहां यात्रा के लिए क्या प्रबंध हो सकता है। इसलिए अच्छे बाजार और अच्छी जगह पाकर चतुर लोग रास्ते के लिए सामान खरीद लेते हैं।

पहले जमाने में यात्री लोग जब अच्छा बाजार मिलता था तो आगे के रास्ते के लिए खाने-पीने की सामग्री आदि खरीदकर रख लेते थे क्योंकि तब बाजार कम होते थे। आज तो कहीं चलो तो बाजार बहुत जल्दी-जल्दी मिलता रहता है। आजकल ट्रेनों एवं बसों में भी सामान बेचनेवाले मिल जाते हैं। पहले ऐसी सुविधाएं नहीं थीं। पहले लोग पैदल चलते थे तो रास्ते में बाजार या गांव जल्दी-जल्दी नहीं मिलते थे। दस-बीस या कभी-कभी तो तीस-चालीस कि.मी. चलने पर ही कोई बाजार मिलता था। बाजार या गांव में पहुंचकर

भी यदि कोई अपना प्रबंध नहीं कर लेता था तो आगे प्रबन्ध होना बड़ा मुश्किल होता था। इसलिए बाजार पाकर अपना संबल कर लेना होता था। ‘संबल’ का अभिप्राय होता है रास्ते का खर्च।

कबीर साहेब अपनी वाणियों में जनता की भाषा, जनता की बोली, जनता के शब्दों को बेहिचक प्रयोग करते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व रेडियो पर कबीर साहेब का एक भजन मुझे सुनने को मिला—

*बन्ना देगो अटरिया जगा दे बन्नरी ।*

*मोरे बन्ना के देह जो नइयां, बिना देह के बन्ना ओढ़े चदरी ।*

*मोरे बन्ना के सिर जो नइयां, बिना सिर बन्ना बांधे पगरी ।*

*मोरे बन्ना के पैर जो नइयां, बिना पैर के बन्ना जावे डगरी ।*

*कहत कबीर सुनो भाई साधो, आवागमन की बनी है कोठरी ।*

इस भजन में ‘बन्ना’ और ‘बन्नरी’ का अर्थ मेरी समझ में ही नहीं आता था। उस समय मैं बाराबंकी जिले में था। सत्संग चल रहा था। सत्संग जब समाप्त हुआ तब मैंने कहा—भाई, बन्ना और बन्नरी का अर्थ क्या है?

एक लड़के ने कहा—साहेब, इसका अर्थ तो हमारे गांव की स्त्रियां अच्छी तरह से बता सकती हैं और हम सब भी इसका अर्थ जानते हैं।

मैंने उस बच्चे से कहा—बताओ इसका अर्थ क्या है? तब उसने बताया कि बन्ना कहते हैं दुलहा को और बन्नरी कहते हैं दुलहिन को।

साहेब कहते हैं कि—बन्ना देगो अटरिया—‘बन्ना’ जो दुलहा है उसको अटरिया दे दो। वह अटरिया पर चला जाये और जो बन्नरी अर्थात् दुलहिन है वह सोई है उसे जगा दो ताकि बन्ना और बन्नरी अर्थात् दुलहा-दुलहन का मिलन हो जाये। यह दुलहा, यह आत्मा जो चैतन्य है उसे अटरिया दे दो अर्थात् स्वरूपस्थिति का उच्च सिंहासन दे दो और मनोवृत्तिरूपी दुलहन को

चाहिए कि वह उससे मिल जाये। वह चैतन्य से मिल जायेगी बस कल्याण हो जायेगा। दुलहा मन को भी कहा जा सकता है और शांतिवृत्ति को दुलहन कहा जा सकता है। तब अर्थ होगा कि मन शांतिवृत्ति में चला जाये, बस, कल्याण हो गया। कबीर साहेब की वाणियों में गांवों-देहातों के इतने शब्द भरे हैं कि उनको समझे बिना सही अर्थ नहीं हो सकता।

साहेब कहते हैं कि ऐसा बाजार, ऐसा गांव पाकर भी जिन्होंने संबल नहीं किया वे पीछे कुछ नहीं कर सकेंगे। जब झाल पड़ जायेगी, अंधियारा हो जायेगा, दिन डूबने लगेगा तब संबल नहीं किया जा सकेगा क्योंकि बाजार और गांव में तो संबल किये नहीं और आगे चले तो जंगल आ गया, अंधियारा हो गया तब क्या करोगे और वहां क्या खरीदोगे। यहां रूपक में कथन है। रूपक और अन्योक्ति में साहेब अपनी बातें बहुत कहते हैं। साहेब कहते हैं—यहां ई सम्मल करि ले—यहीं संबल कर लो, अपने रास्ता का खर्च इकट्ठा कर लो। “आगे विषयी बाट”—आगे का रास्ता तो विषयों का बाट है। विषयों से भरा है। “स्वर्ग बिसाहन सब चले, जहां बनिया ना हाट”—वहां तो न ‘बनिया’ है और न बाजार ही है। बनिया और बाजार दोनों नहीं हैं लेकिन वहां लोग स्वर्ग खरीदने चले।

हमें अपने जीवन में ही संबल करना चाहिए। बिना सम्बल किये, खाने-पीने का सामान और रुपया-पैसा बिना लिये यदि कोई चल दे तो तकलीफ पायेगा। इसी प्रकार यह मानव जीवन भी एक यात्रा है और इस यात्रा में संबल करने की जगह यही मानव शरीर है। शरीर ही पुर है। इसीलिए इस आत्मा को पुरुष कहा जाता है—“पुरि शेते पुरुषः” अर्थात् शरीररूपी पुर में जो शयन करता है वह चेतन ही पुरुष है और यह शरीर ही पुर है। यह शरीर बड़ा दुर्लभ है। ‘पाटन’ सत्संग है और सत्संग बड़ा दुर्लभ है।

हमारा यह उत्तम चोला और सत्संग, दोनों ही बड़े दुर्लभ हैं। हम यदि पशु-पक्षी होते, कीड़े-मकोड़े होते तो कुछ न समझ पाते। उनमें भी मन तो है लेकिन वहां उसका विकास नहीं है। उनके मन का आयाम बड़ा सीमित है। देखा जाता है कि दूर-दूर से चरकर पशु

अपने खूटे पर आकर खड़े हो जाते हैं और दिनभर घूम घामकर चींटियां अपने बिलों में आ जाती हैं। अतएव यादगिरी तो उनमें है, स्मृति तो उनमें है लेकिन विवेक उनके पास नहीं है। विवेक केवल मनुष्य के पास है। मनुष्य में मन का बहुत विकास है। इसीलिए वह परेशान भी है। पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े अपने मन से उतना परेशान नहीं हैं।

दुनिया में केवल एक ही प्राणी ऐसा है जो पागल होता है और वह है मनुष्य। कुत्ता भी पागल होता है लेकिन वह तब पागल होता है जब उसकी खोपड़ी में कीड़े लग जाते हैं। हाथी भी तब पागल होता है जब उसको मद चढ़ जाता है। हाथी और कुत्ता दोनों के पागल होने के कारण केवल भौतिक हैं, मानसिक नहीं है। मन की चिंता के कारण जो प्राणी पागल होता है वह केवल मानव ही है। बैल, घोड़ा, गदहा और कोई भी वैसा नहीं है जो मन के कारण पागल हो, क्योंकि उनका मन परेशान नहीं होता है, हैरान नहीं होता है।

मनुष्यों में अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे लोग हैं, जज हैं, इंजीनियर हैं, प्रोफेसर हैं और मनोवैज्ञानिक हैं लेकिन वे और भी परेशान हैं। वे सभी अपने-अपने मन के बोझ से दबे हैं। इसका कारण है कि उनको विकसित मन मिला है और उस मन का नियोजन उन्होंने सन्मार्ग में नहीं किया किंतु असन्मार्ग में किया है। जिससे चित्त निर्मल हो, ऐसी शैली न अपनाकर मनुष्य ऐसी शैली अपनाता है जिससे चित्त उलझ जाये।

इंसान रात-दिन राग-द्वेष की बातें करता रहता है और हरदम दूसरे के बारे में सोचा करता है। वह कभी भी अपने विषय में नहीं सोचता, अपने बंधनों को काटने की बात नहीं सोचता किंतु दूसरे पर अंगुलि निर्देश करता है कि अमुक-अमुक ऐसे हैं-वैसे हैं। हम अपने समय को ऐसी बातों और ऐसे चिंतन में बिताते रहते हैं जिनका हमारे जीवन में कोई मतलब नहीं होता और इस प्रकार हम अपने अमूल्य समय को निरर्थक खोते रहते हैं और निरर्थक ही नहीं अनर्थक भी करते हैं। साहेब निर्देश करते हैं कि हमें अपने इसी जीवन में संबल करना है।

पारख प्रकाश : जुलाई

विचारणीय बात है कि संबल क्या है? असली धन क्या है? असली सम्पत्ति क्या है? वह असली धन है सद्गुणों का और वही आध्यात्मिक सम्पत्ति है, वही दैवी सम्पदा है। दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा, ये दो सम्पदायें हैं। आसुरी सम्पदा मनुष्य की आत्मा के लिए अनर्थक है लेकिन दैवी सम्पदा कल्याणकारी है। कबीर साहेब ने कहा है—

है कोइ गुरुज्ञानी जगत उलटि वेद बूझै।  
पानी में पावक बरै, अंधहिं आंखि न सूझै।  
गाई तो नाहर खायो, हरिन खायो चीता।  
काग लंगर फाँदि के, बटेर बाज जीता।  
मूस तो मंजारि खायो, स्यार खायो स्वाना।  
आदि को उदेश जाने, तासु बेस बाना।  
एकहि दादुर खायो, पांचहिं भुवंगा।  
कहहिं कबीर पुकारि के, हैं दोऊ एकै संग।

इस पद को पढ़ने से ऐसा लगता है कि मानो एक परदा लगा हो और उसको हटाकर कबीर साहेब लोगों के सामने स्टेज पर अचानक आ गये हों और तब उपस्थित समाज को देखकर उन्होंने कहा हो कि—है कोई गुरुज्ञानी, जगत उलटि वेद बूझै। कोई गुरुज्ञानी, श्रेष्ठज्ञानी है इस सभा में जो जगत से उलटकर वेद को बूझे। यह एकदम अचरजभरी बात है। कबीर साहेब यहां एकदम चौंकानेवाली बात कहते हैं। लोग इसे सुनकर एकदम चौंक जाते हैं कि अरे, यह बाबा क्या कह रहा है? पानी में पावक बरै, अंधहिं आंखि न सूझै। पानी में आग जल रही है और किसी को यह दिखाई ही नहीं देता है। क्या हम लोग अंधे हैं। बाबा की यह बात तो गलत लगती है। लोगों ने उनसे कहा—महाराज, आप गलत कह रहे हैं। अरे, पानी में कहीं आग जल सकती है? तब साहेब कहते हैं—हां, जलती है और तुम लोग अंधे हो क्योंकि देख ही नहीं रहे हो। इतनी कठोर बात साहेब कह देते हैं जिससे लोग और अधिक आकर्षित हो जाते हैं कि भाई, इतने दावे से भरी बात! फिर तो इसे समझना चाहिए।

“पानी में पावक बरै, अंधहिं आंखि न सूझै”, आपकी आत्मा, आपकी चेतना, आपका स्वत्व, आपका

अपना आपा जो भी आप कह लीजिए, पानी के समान शीतल है। पानी तो एक उदाहरण है और बात को समझाने के लिए कहा गया है।

पानी शीतल होता है उसी प्रकार तुम्हारी आत्मा भी शीतल है लेकिन उसमें आग जल रही है। कैसी आग जल रही है क्रोध की, काम की, ईर्ष्या की, द्वेष की, देहाभिमान, चिंता, विकलता की आग उसमें जल रही है जिससे आदमी का चित्त निरन्तर मानसिक आग में जलता रहता है। साहेब कहते हैं कि पानी में पावक जल रहा है लेकिन हम अंधे हो गये हैं। हमें वह दिखाई नहीं देता है। हम अपने स्वरूप को पहचानते नहीं हैं। हम यह नहीं समझते हैं कि मेरी अपनी आत्मा तो स्वाभाविक ही शीतल है फिर उसमें जलन क्यों है।

पानी सदैव शीतल होता है। वह कभी गरम नहीं होता। पानी यदि गरम होता तो गरम पानी आग में छोड़ने से आग बूझती नहीं। आग में गरम पानी डाल देने से आग बुझ जाती है। इसलिए पानी गरम नहीं, शीतल है। पानी गरम है—इसका मतलब है कि पानी में आग के कण मिले हैं इसीलिए पानी गरम है और आग के कण पानी नहीं हैं। आग और पानी दोनों सर्वथा पृथक-पृथक तत्त्व हैं। दोनों के गुण-धर्म अलग-अलग हैं। इसी प्रकार हमारे में जो क्लेश है, वह हमारा स्वरूप नहीं है। वह हमारी अपनी आत्मा का गुण नहीं है। वह तो मानसिक विकारों की देन है और प्रक्षिप्त है। वह आकर पड़ा है और वह मेरा अपना स्वरूप नहीं है। तम्बाकू खा-खाकर हमने तम्बाकू की आदत बनायी है और उसकी उलझन बनायी है। तम्बाकू को छोड़ करके हम उससे बिलकुल निवृत्त हो सकते हैं। मान लीजिये, किसी आदमी के प्रति हमने वैर बना लिया और वैर बनाकर हम तनावग्रस्त हो गये तो हमने यह एक नया उपद्रव अपने में ले लिया। लेकिन यदि हम वैरभाव का त्याग कर दें तो हमारा वह उपद्रव बिलकुल दूर हो सकता है। इसी प्रकार जितने बंधन हम बनाते हैं वे हमारा स्वरूप नहीं होते हैं। उनको हम जब चाहते हैं तब त्याग देते हैं। यदि वे हमारा स्वरूप होते तब हम उनको कैसे त्याग पाते।

साहेब इस पद में आगे कहते हैं—गाई तो नाहर खायो—अर्थात् एक गाय थी जिसने सिंह को खा लिया। ‘नाहर’ का मतलब होता है सिंह। गाय ने सिंह को खा लिया और ‘हरिन खायो चीता’—एक हिरन था उसने चीते को खा लिया। ‘काग लंगर फांदि के, बटेर बाज जीता’—एक कौवा था, जिसने लंगर जैसे विषैले पक्षी को खा लिया, विषैले जानवर को खा लिया और एक बटेर था जिसने बाज को झपटकर खा लिया। ‘मूस तो मंजारि खायो’—एक चूहा था उसने बिल्ली को धर दबोचा और ‘स्यार खायो स्वाना’—एक सियार था उसने कुत्ते को खा लिया जबकि कुत्ते भौंक देते हैं तो सियार भाग खड़े होते हैं। “आदि को उदेश जाने तासु बेस बाना”—साहेब कहते हैं कि जो ‘आदि’ का ‘उदेश’ जानता है उसी का वेष-बाना सफल है।

“आदि को उदेश”—उदेश अर्थात् उद्देश्य और आदि अर्थात् मूल। आदि के दो अर्थ होते हैं आरम्भ और मूल। यहां आदि का अर्थ आरम्भ नहीं किंतु मूल है—‘आदि का उदेश’—अर्थात् मूल उद्देश्य को जो समझता है उसी का वेष बाना सफल है।

“एकहि दादुर खायो पांचहि भुवंगा, कहहि कबीर पुकारि के हैं दोउ एकै संगी”—एक मेढक था उसने पांच सांप को खा लिया। साहेब कहते हैं कि दोनों एक ही साथ रहते हैं। यही दैवासुर सम्पदा का वर्णन है। साहेब के इस पद में खास बात यह है कि कमजोर पक्ष ने बलवान पक्ष को खा लिया। जैसे गाय, हिरन, काग, बटेर, चूहा, सियार और मेढक ये कमजोर पक्ष के हैं जबकि सिंह, चीता, बाज, लंगर, बिल्ली और सांप ये बलवान पक्ष के हैं लेकिन कमजोर पक्ष ने बलवान पक्ष को खा लिया। इसका अभिप्राय है कि शील, क्षमा, दया, करुणा, प्रेम आदि सद्गुण बलवान पक्ष के हैं जबकि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्गुण कमजोर पक्ष के हैं। लेकिन कमजोर पक्ष ने ही बलवान पक्ष को खा लिया। हिरन, चीता, गाय और नाहर का आप अलग-अलग जो भी अर्थ करें, कर सकते हैं। इसमें मतभेद हो सकता है क्योंकि बुझौवल में किसी शब्द का एक ही अर्थ हो पाना बड़ा मुश्किल है लेकिन इतना साफ है कि जो कमजोर

पक्ष है उसने बलवान पक्ष को खाया है और कमजोर पक्ष दुर्गुण पक्ष है तथा बलवान पक्ष सद्गुण पक्ष।

विचार बलवान पक्ष है तो काम कमजोर पक्ष। काम अंधकारधर्मा है और विचार प्रकाशधर्मा। विचार आने पर काम नहीं रह जाता क्योंकि काम कमजोर और अंधकारधर्मा है किंतु उसी ने विचार को खा लिया है। ईर्ष्या, घृणा कमजोर पक्ष हैं जबकि प्रेम बलवान पक्ष है लेकिन ईर्ष्या और घृणा ने ही प्रेम को खा लिया। प्रेम में हम बहुत समय तक रह सकते हैं और इतना ही क्यों पूरी जिंदगी हम प्रेम में बिता सकते हैं लेकिन ईर्ष्या, घृणा में हम पूरी जिंदगी नहीं रह सकते। ईर्ष्या और घृणा के भाव हमारे मन में जितने समय तक रहते हैं, उतने समय तक हमारे जीवन में नरक रहता है। यदि क्षणमात्र के लिए ही हमारे मन में ईर्ष्या आ जाये तो हमारा मन खराब हो जाता है। इसलिए ईर्ष्या में बहुत समय बिताना बहुत मुश्किल है।

आदमी जब कामातुर होता है तो जितने क्षण के लिए वह कामातुर होता है उतने क्षण उसका मन कितना विह्वल, मलिन, दीन, शक्तिहीन और पश्चाताप से ग्रस्त हो जाता है। आदमी उसी कामातुरता में जिंदगी कैसे बिता सकता है। लेकिन आदमी में विचार आ जाये तो विचार में, ब्रह्मचर्य में पूरी जिंदगी आराम से बितायी जा सकती है। सद्गुणों में पूरी जिंदगी स्वस्थ ढंग से बितायी जा सकती है। दुर्गुणों में जिंदगी नहीं बितायी जा सकती। दुर्गुण थोड़े समय के लिए आते हैं और मनुष्य को उद्वेलित कर देते हैं। उतने में ही वह परेशान हो जाता है लेकिन आश्चर्य है कि दुर्बल पक्ष ने ही सबल पक्ष को खा लिया। कामादिक दुर्गुण, जो दुर्बल पक्ष है, विचारादि सबल पक्ष को खा लिया।

साहेब कहते हैं कि जो आदि को उद्देश्य अर्थात् मूल उद्देश्य जानता है वही सफल मनुष्य है। हमारा मूल उद्देश्य क्या है? हमारा मूल उद्देश्य है दुखों से निवृत्ति। हमारा मूल उद्देश्य न तो परमात्मा को पाना है न मोक्ष को पाना है और न कुछ और को पाना है बल्कि हमारा मूल उद्देश्य है दुख की निवृत्ति और इसी को विविध भाषाओं में अनेक प्रकार से कहा जाता है। कोई उसी को निर्वाण

की प्राप्ति कहता है, कोई मोक्ष की प्राप्ति कहता है, कोई कल्याण की प्राप्ति कहता है। कोई इसी को दुख की निवृत्ति कहता है।

सांख्य दर्शन में कहा गया है कि—अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्ति पुरुषार्थः—अर्थात् तीनों दुखों की अत्यन्त निवृत्ति ही मनुष्य का अत्यन्त पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ का मतलब पुरुष का प्रयोजन है। “पुरि शेते पुरुषः”—शरीररूपी पुर में जो शयन करता है उस चैतन्य का, उस आत्मा का, उस जीव का ‘अर्थ’ क्या है, प्रयोजन क्या है—दुख से छुटकारा हो जाना। दुखों से छुटकारा ही पुरुषार्थ है और यही हमारा उद्देश्य है।

हम परमात्मा नहीं चाहते, मोक्ष नहीं चाहते। हम केवल दुख की निवृत्ति चाहते हैं। यह बारम्बार कहा जाता रहा है कि मिलने वाली वस्तु मिलकर छूट जाती है। यह प्रकृति का विधान है। अगर परमात्मा या मोक्ष अलग है तो वह भी मिलेगा और मिलकर छूट जायेगा। तब ऐसा उधारी का सौदा कबतक काम देगा। इसलिए परमात्मा, मोक्ष या निर्वाण अलग से पाना नहीं है किंतु मनुष्य की आत्मा, मनुष्य का लक्ष्य, मनुष्य का स्वत्व, जो कुछ मनुष्य है, जो मनुष्य की सत्ता है वही परम प्राप्तव्य है और वह मिला ही है। उसे पाना नहीं है किंतु वह मनुष्य का अपना स्वरूप ही है। मनुष्य को अपने मन को बाहर से समेटकर अपने आप में ठहर जाना है, बस।

मनुष्य की एक सत्ता तो भीतर है जिसको अभी कहा गया और उसकी दूसरी सत्ता स्थूल शरीर के रूप में है। वह मिट्टी का है लेकिन उसके अंदर जो चेतना है, जो ज्ञानतत्त्व है, जो ‘मैं’ के रूप में है वही उसकी वास्तविक सत्ता है और उस सत्ता में प्रतिष्ठित हो जाना ही जीवन का लक्ष्य है। इसलिए साहेब कहते हैं कि जो ‘आदि का उद्देश’ जानता है उसी का—‘वेष-बाना’ सफल है। साहेब आगे कहते हैं कि “हैं दोऊ एकै संग” ये दोनों एक ही साथ में रहते हैं। सद्गुण और दुर्गुण दोनों एक ही साथ रहते हैं।

साहेब कहते हैं—“है कोई गुरुज्ञानी जगत उलटि वेद बूझै”—अर्थात् कोई श्रेष्ठ ज्ञानी है जो जगत को उलटकर वेद को बूझे। लोग कहते हैं कि कबीर ने तो

वेदों का केवल खण्डन किया है परन्तु जो ऐसा कहते हैं उनकी बात उचित नहीं है। पहले उन लोगों को पूरी कबीर वाणी पढ़ना चाहिए और उस पर मनन-चिंतन करना चाहिए। यहीं देखिये, वे कहते हैं कि वही गुरुज्ञानी है, श्रेष्ठ ज्ञानी है जो जगत को उलटकर वेद को बूझता है यानी जगत से लौटकर वेद को बूझता है। वेद ज्ञान है और वेद ऋक्, यजु, साम और अथर्वादि चार पुस्तकें भी हैं। ये वेद के दो अर्थ हैं। यहां वेद का अर्थ चारों पुस्तकें नहीं हैं। यहां वेद का मुख्य अर्थ ज्ञान है।

आपका स्वरूप वेद ही है। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने कहा है—‘ऐ मैत्रेयी! इसी आत्मा से सब निकलता है। नगाड़े से निकलती हुई आवाज को यदि कोई पकड़ना चाहे तो पकड़ नहीं सकता किंतु यदि वह नगाड़े को पकड़ ले तो मानो नगाड़े की आवाज पकड़ी हुई है। इसी प्रकार तुरही से, बंशी से निकलती हुई आवाज को कोई नहीं पकड़ सकता लेकिन अगर तुरही और बंशी को पकड़ लिया तो जानो उनकी आवाज पकड़ ली गयी। इसी प्रकार आत्मा ही से सारे ज्ञान-विज्ञान निकलते हैं और कोई आत्मा को पकड़ ले तो मानो सारा ज्ञान-विज्ञान उसने पकड़ लिया। इसलिए अपने आप को पकड़ो। जब आप अपने को पकड़ लो तो सब पकड़ा हुआ हो जायेगा। ज्ञान तत्त्व, चैतन्य तत्त्व, वेद तत्त्व आपका अपना स्वरूप ही है उसी को पकड़ो।

साहेब कहते हैं कि वही गुरुज्ञानी है, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है जो जगत से लौटकर वेद को अर्थात् ज्ञान को बूझता है, निजतत्त्व को बूझता है और निजतत्त्व पानी के समान शीतल है लेकिन उसमें आग लगी हुई है। हम अपने स्वरूप को समझते नहीं हैं इसलिए हरदम दुखी हैं। जो सारे विकारों से रहित एकदम शुद्ध-बुद्ध है, चैतन्य है वही रात-दिन चिंतातुर है, पीड़ित है और शोकित है। वही अपने को मान लेता है कि ‘मैं स्त्री हूँ’, ‘मैं पुरुष हूँ’, ‘मैं सास हूँ’, ‘मैं बहू हूँ’, ‘मैं जेठ हूँ’, ‘मैं देवर हूँ’, ‘मैं पिता हूँ’, ‘मैं पुत्र हूँ’, ‘मैं बालक हूँ’, ‘मैं ब्राह्मण हूँ’, ‘मैं शूद्र हूँ’, और भी पता नहीं क्या-क्या अपने को वह मान लेता है लेकिन ‘मैं’ तत्त्व यह सब बिलकुल नहीं है। यह सब तो औपाधिक है, शरीर संबंध



से है, नकली है। शुद्ध 'मैं' तत्त्व तो केवल चेतन है। उसका लक्षण ही है ज्ञान, चैतन्य और वेद। इसलिए वेद को जो बूझता है, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है, वही गुरुज्ञानी है।

मैं कह रहा था कि दो सम्पदायें हैं—दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा। आसुरी सम्पदा यानी आसुरी सम्पत्ति, दुर्गुणों की सम्पत्ति और वह पीड़ा देनेवाली है। जो दैवी सम्पदा है, सद्गुणों की सम्पत्ति है वह शांति देनेवाली है। हमें किसका संबल करना है—दैवी सम्पदा का ही संबल करना है।

हमने अगर बहुत बड़ा मकान बनवा लिया है तो निश्चित है यह एक बाहरी उपलब्धि है। हमने एक बड़ा भूखण्ड खरीद लिया है तो यह भी एक बाहरी उपलब्धि है। हमने अगर बहुत विद्या पढ़ ली है और ऊंचे पद पर हम पहुंच गये हैं तो यह भी एक बाहरी उपलब्धि हुई। हमारी बहुत-सी शाखा हो गयी तो यह भी एक उपलब्धि है लेकिन ये सब हमारी असली उपलब्धि नहीं हैं। हमारी असली उपलब्धि है—आध्यात्मिक सम्पत्ति। हमारे मन के विकार दूर हो जायें, दोष-दुर्गुण दूर हो जायें, सद्गुण बढ़ जायें और अपनी आत्मा में हमें संतोष की प्राप्ति हो जाये, इसके समान दूसरा धन इस पूरी दुनिया में नहीं है।

आदमी के पास चाहे जितना धन हो, उससे वह केवल रोटी लेता है, कपड़ा लेता है। इसके अलावा और क्या लेता है। जो झोपड़ी में रहता है उसका भी पेट-परदा चलता है, गुजर होता है और जो महल में है उसका भी पेट-परदा चलता है और उसका भी गुजर होता है। हम पैदल चलकर यात्रा करते हैं कि कार में बैठकर यात्रा करते हैं लेकिन अपनी मंजिल में पहुंचते ही हैं। हर आदमी यात्रा करता है और अपनी मंजिल पर पहुंचता है। कोई बस में बैठकर पहुंचता है, कोई ट्रेन में बैठकर पहुंचता है। कोई है जो अपनी कार से पहुंचता है, कोई हवाई जहाज से पहुंचता है और कोई पैदल या साइकिल, मोटरसाइकिल से अपनी मंजिल पर पहुंचता है। अपनी-अपनी मंजिल पर पहुंचते सब हैं लेकिन चित्त की शांति और अशांति में ही फरक समझना चाहिए। बाहरी चीजों में कोई बड़ा फरक नहीं है। हम अपने को

प्राणी-पदार्थों और अवस्था-परिस्थितियों से जोड़ लेते हैं और तभी फरक पड़ने लगता है।

मान लीजिए मुझे सुनने के लिए ज्यादा लोग आ जायें और मैं यह समझने लगूं कि मैं बड़ा आदमी हूं या अगर मैं ज्यादा जोरदार व्याख्यान दे लूं और मैं मानने लगूं कि मैं बड़ा व्याख्याता हूं या मेरे पास ज्यादा रुपये-पैसे हों, बड़ा समाज हो और मैं यह मानने लगूं कि मैं बड़ा आदमी हूं तो यह बहुत ही तुच्छ विचार होगा। कौन आदमी बड़ा है और कौन आदमी छोटा इसकी परिभाषा मायिक क्षेत्र में ही हो सकती है। लेकिन जो ज्ञान तत्त्व है, जो शुद्ध तत्त्व है उसमें स्थित होने वाले जितने हैं वे सभी समान होंगे और वही दशा उच्चतम दशा है। उस सम्पत्ति को हमें समझना चाहिए। उसी सम्पत्ति से जो भरा होता है, वही आनन्दित होता है। जो बाहरी सम्पत्ति बटोरता है, बाहरी सम्पत्ति से जो भरा-भरा दिखता है, वह भी अन्दर से खाली-खाली है। जो अन्दर से भरा हो, वही सम्पदाशाली है।

इस दुनिया में जितने महात्मा हुए हैं वे सभी अन्दर से भरे थे। ऐसा नहीं है कि उनके पास बहुत धन-सम्पदा थी तब वे बड़े हुए थे। आप कबीर साहेब को लीजिए। वे किसी मां-बाप से पैदा हुए थे और लहरतारा तालाब पर छोड़ दिये गये थे। नीरू और नीमा नामक जुलाहे दम्पति ने उनको पाया और पाला-पोषा जो बहुत गरीब थे। कपड़ा बुनना उनका पेशा था इसलिए कबीर साहेब भी कपड़ा बुनने लगे। फिर आगे उनका सत्संग बढ़ा, विवेक-विचार बढ़ा। अनेक जन्मों के शुद्ध संस्कार उनमें थे। वे अत्यन्त प्रतिभावान पुरुष थे। दुनिया के वे एक महान संत हुए।

महात्मा ईसा जब पैदा हुए थे तो उनको रखने के लिए पलना नहीं था। एक नाद में, जिसमें पशुओं को चारा खिलाया जाता है उनकी माता मरियम ने घास रखा, उस पर कपड़ा बिछाया और उसी पर ईसा को सुलाया था। महात्मा ईसा बहुत गरीबी में पले थे। वे बढ़ई का काम करते थे और दुनिया के महापुरुष हुए। महाराज श्रीकृष्ण गायें चराते थे। मुहम्मद साहेब के माता-पिता

पारख प्रकाश : जुलाई

बहुत गरीब थे। वे बहुत गरीब घर में पैदा हुए थे और दूसरे के यहां नौकरी करके गुजर करते थे। रविदास जी महाराज को देखिये, वे जूता टांकते थे। इस प्रकार दुनिया के कितने महापुरुषों के नाम लिये जायें। वे न तो धन से बड़े हुए थे और न विद्या से। वे बड़े हुए थे तो आध्यात्मिक सम्पत्ति से।

महात्मा बुद्ध पैदा तो हुए थे राजघराने में लेकिन आदरणीय तभी हुए थे जब राज्य छोड़कर हाथ में भिक्षा मांगने का कटोरा ले लिये थे और तप किये थे। वे भी जब भिखारी हो गये तभी पूज्य हुए थे। राजे-महाराजे तो न जाने कितने पैदा हुए और मर गये, कोई उनको पूछता तक नहीं। महात्मा बुद्ध स्वयं राजा नहीं हुए थे और वे राजा भी हो जाते तो उनको भी कोई न जानता।

कहने का मतलब है कि बुद्ध भी बुद्ध तभी हुए जब भिक्षु हो गये। इसका मतलब यह नहीं है कि सभी लोग घर-द्वार छोड़ दें तभी महान हो सकेंगे। घर में रहें कोई हर्ज नहीं है लेकिन आध्यात्मिक शक्ति जिनकी बड़ी हो गयी वे महान हो गये। हममें आपमें जिसमें भी वह शक्ति बढ़ जायेगी वही महान हो जायेगा। आध्यात्मिक शक्ति बढ़ने पर आदमी महान होता है। इसलिए हमारे जीवन का संबल क्या है—शील, क्षमा, वैराग्य, भक्ति और ज्ञान। समता, मैत्री, सद्भावना, परोपकार की भावना ये जितने सद्गुण हैं ये ही संबल हैं।

सद्गुणों के आचरण से हमारे संस्कार पवित्र होते हैं और पवित्र संस्कार ही हमारी कमाई है। अपने मन, वाणी और कर्मों से जो कुछ भी हम करते हैं उनके संस्कार हमारे मन में इकट्ठे होते रहते हैं और वे अगर अच्छे हुए तो मक्खन बनते हैं और अगर खराब हो गये तो विष हो जाते हैं। गलत कर्म करनेवाले के एक-एक कर्म द्वारा गंदे संस्कार इकट्ठा हो-होकर उसके अंदर में विष भरता जाता है लेकिन अच्छे कर्म करनेवाले के एक-एक संस्कार उसके अंदर में इकट्ठा हो-होकर मधु भरते जाते हैं।

आदमी दो प्रकार का संबल करता है। एक अच्छा और दूसरा खराब। आप ताड़ का पेड़ तो देखे ही होंगे।

ताड़ के पेड़ में नीचे से ऊपर तक खूंटी ही खूंटी होती है। ताड़ का पूरा पेड़ ही कांटेदार हो जाता है लेकिन कुछ पेड़ ऐसे होते हैं जो नीचे से ऊपर तक बिलकुल चिकने-चिकने रहते हैं। हम ताड़ के पेड़ के समान कांटेदार बनना चाहते हैं कि चिकने पेड़ के समान चिकना बनना चाहते हैं इसका निर्णय करें। हम अपने जीवन में कांटे जोड़ते जाना चाहते हैं कि मधु इकट्ठा करना चाहते हैं, इस पर विचार करें।

ऋग्वेद के ऋषि ने कहा है—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिंधवः ।

माध्वीर्नः

संत्वोषधीः

ऋग्वेद का यह एक गायत्री मंत्र है। ऋषि कहता है कि ऋत के पथ में चलने वाले के लिए वात मधु ढोता है। नदियां उसके लिए मधु बहाती हैं और औषधियां उसके लिए मधु बरसाती हैं। जो ऋत से चलता है अर्थात् नियम से चलता है, विचार से चलता है या कह लीजिए कि जो दैवी सम्पदा से चलता है उसके लिए हवायें मधु ढोती हैं, नदियां मधु बहाती हैं, वनस्पतियां मधु बरसाती हैं। यहां हवा, नदी और वनस्पतियां इन तीनों के नाम लेकर बात कही गयी है। अभिप्राय यह है कि पूरी सत्ता ही उसके लिए मधु बरसाती हैं। जो नियम से चलता है उसके लिए मानो सर्वत्र मधु बरसता है।

‘ऋत’ नियम है। ऋग्वेद में ऋत शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उसमें ऋत शब्द के तीन अर्थ किये गये हैं—एक यज्ञ, दूसरा—प्रकृति के नियम और तीसरा—नैतिकता के नियम। इन तीनों अर्थों में पहला अर्थ बड़ा स्थूल है। यज्ञ का विधान ऋत कहा जाता है। वेद ज्यादातर यज्ञप्रधान हैं। इसलिए पंडितों ने ऋत का अर्थ यज्ञ का विधान बताया है जैसे कि किसी यज्ञ में कैसे हवनकुण्ड खोदना चाहिए। लकड़ी कितनी और किस-किस की चाहिए। वध के लिए कितने पशु चाहिए और हवन के लिए कितना घी चाहिए इत्यादि। पुराकाल में यज्ञ के जो सारे विधान होते थे उन सबको मिलाकर ऋत कहा जाता था लेकिन ऋत का जो महत्त्वपूर्ण अर्थ वेद में है और जो वेद द्वारा सिद्ध भी है, वह है प्रकृति का नियम। ऋत से ही सूरज चमकता है, ऋत से हवायें

चलती हैं। ऋत से अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड अपने नियमों में निरन्तर चल रहा है। यह ऋत की महिमा है। ऋत ही नियम है। संसार में नियम है। द्रव्य है और द्रव्यों में गति है। द्रव्य और गति जगत का स्वभाव है। द्रव्य है वस्तु और उसमें गति अंतर्निहित है। जैसे हवा एक द्रव्य है और उसमें गति है। मिट्टी में कंकड़-पत्थर सदैव बनते रहते हैं। उसमें भी गति है। जल एक द्रव्य है। उसमें भी गति है और आग भी एक द्रव्य है और उसमें भी गति है। दुनिया में द्रव्य और गति सर्वत्र देखा जाता है।

प्रकृति में एक नियम है। नियम के अनुसार उसकी व्यवस्था है। संसार अनियमित नहीं है। उसका नियम है। कुछ होने से कुछ होता है। गरमी के बाद वर्षा होती है और वर्षा के बाद ठंडी होती है। उसका प्राकृतिक नियम है। हम अपने शरीर में ही देख लें। इसमें नियम है। पेट का एक नियम है। चार रोटी खाने से यदि पेट ठीक रहता है तो पांच खा लेंगे तो पेट गड़बड़ होगा यह निश्चित है। इस नियम का उल्लंघन करके कोई सुखी नहीं रह सकता। इसलिए हमें अपनी आंत के नियम को पहचानना चाहिए कि कितना खाना चाहिए। जितना खाना चाहिए उतना ही यदि खाया जाये तो मानो हमारे लिए मधु है। यदि हम नियम छोड़ देंगे, ऋत को छोड़ देंगे तो हमारे लिए सब विष हो जायेगा। ज्यादा खा लो तो वही विष हो जायेगा। कहीं भी हो, जो नियम बनाया गया है उसका पालन अवश्य करना चाहिए।

जो प्राकृतिक नियम है वह विश्वजनीन और अनादि-अनन्त है। यह प्राकृतिक नियम 'ऋत' है। जो मानसिक नियम है वह नैतिकता का नियम है और वह भी ऋत है। अगर हम क्रोध करेंगे तो हमारा मन क्षुब्ध होगा। उसको कोई काट नहीं सकता। इसलिए अगर हम क्रोध करते हैं तो हम पाप करते हैं। अगर हम कामातुर होंगे तो हम अपनी स्थिति से दूर होंगे। विषय-चिंतन हम करेंगे तो हमारे में कामुकता, कामातुरता आयेगी। क्योंकि विषयों के चिंतन से विषयों का राग होता है और राग होने से कामना उठ पड़ती है। कामना जब उठती है तो उसमें विघ्न पड़ने पर आदमी में क्रोध भड़क उठता है। यह एक क्रमिक नियम है। इसी को मनोविज्ञान

कहते हैं। इसको मन के नियम या नैतिकता के नियम कह सकते हैं। जिस ढंग से मन को रखने से मन में शांति होती है, उसी ढंग से मन को न रखने से अशांति होगी, यह निश्चित है। पूजा करने से काम न बनेगा किंतु नियम पालन से काम बनेगा।

हम किसी की हत्या कर दें और हत्या करने के बाद पूजा कर लें तो वह पूजा हमें शांति न दे सकेगी। क्योंकि हत्या करने से हमारे चित्त में जो क्रूर संस्कार जम गये हैं वे हमारी अंतरात्मा को व्यथित करते रहेंगे। हमने ऋत के साथ अन्याय किया है और उसका फल हमें मिलना है। इसलिए हमें दया और प्रेम का व्यवहार करना चाहिए। हम पूजा नहीं करते हैं तो कोई हर्ज नहीं है किंतु ऋत का उल्लंघन न करें। हमें चाहिए कि हम ऋत का ध्यान रखें। नैतिकता के जो नियम हैं, मन के जो नियम हैं उनका हम ध्यान रखें तो हमारा कोई नुकसान न होगा।

*मन की तरंग मार लो, बस हो गया भजन।*

*आदत बुरी सुधार लो, बस हो गया भजन।*

एक भजन की ये पंक्तियां हैं और कितनी अच्छी बात इन पंक्तियों में कही गयी है। असली भजन यही है कि मन की तरंगों को देख-देखकर मारते रहना। लेकिन जो बाहरी भजन है वह भी चित्त की शुद्धि के लिए ही है। चित्त यदि शुद्ध न हो तो बाहरी भजन किसी काम का नहीं होगा। इसलिए मन के नियम को हमें समझना चाहिए।

मैं कह रहा था कि हमारी असली सम्पत्ति क्या है? हम किसका सम्बल करें? इसका उत्तर है कि हम नैतिकता का संबल करें। नैतिकता ही हमारी असली सम्पत्ति है। सदाचार का हम संबल करें, सदाचार ही हमारी असली सम्पत्ति है। हमारे एक-एक कर्म से संस्कार बनते हैं। जैसे आप देखते होंगे कि कुछ-कुछ गीली चीजों में खमीर उठ जाती है। इसी प्रकार हमारे कर्मों में भी खमीर उठ जाती है। जो कर्म हम करते हैं उसमें खमीर उठती है। मतलब यह है कि यदि हम चोरी किये हैं तो उसका संस्कार रूपी खमीर मन में उठेगी और वह बारम्बार मन को कचोटेगी। —**क्रमशः**